**संपादन:**
राजेश खिंदरी
मांधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

**वितरण:**
महेश बसेड़िया

**सहयोग:**
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

शैक्षिक
# संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-35, दिसंबर 2000-जनवरी 2001

**संपादन एवं वितरण:**
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद - 461 001
फोन: 07574 - 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com
eklavyahoshangabad@bigfoot.com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
( ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं )

**मुखपृष्ठ:** तितलियों के रंगबिरंगे पंखों का एक बड़ा किया हुआ चित्र। तितलियों का यह रंग-बिरंगापन अक्सर उनके पंखों में मौजूद रंजकों की वजह से नहीं होता बल्कि पंखों की बनावट की वजह मे होता है। जैसे पानी के बुलबुलों या पानी की सतह पर फैली तेल की झिल्ली में कोई रंगीन पदार्थ मौजूद नहीं होता परन्तु फिर भी वे अत्यन्त रंग-बिरंगे दिखते हैं, तितलियों में भी कुछ ऐसा ही होता है। विस्तृत लेख देखिए पृष्ठ 27 पर।

**पिछला आवरण:** ततैया एक बेहोश की गई इल्ली को अपने घरौंदे में घुसा रही है। इसके बाद वह उसमें एक अंडा देगी और घरोंदे को मिट्टी से बंद कर देगी। मटकेनुमा घरौंदा बनाने वाली यह ततैया (वास्प) अपनी संतानों की परवरिश की तैयारी बहुत पहले ही कर लेती है; मिट्टी का घरोंदा बनाकर उसमें इल्लियों को बेहोश करके अपने अंडे के साथ रख देती है ताकि जब अंडों में से इल्लियां निकलें तो उन्हें तैयार भोजन उपलब्ध हो। इस विषय पर लेख पृष्ठ 97 पर।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***इन्टरप्रिटिंग द अर्थ:*** *रॉबर्ट आर. कॉम्पटन; प्रकाशक: हारकोर्ट ब्रेस जोवानोविच, न्यूयॉर्क।* ***ग्राउंड वाटर हाइड्रोलॉजी:*** *डेविड कीथ टॉड; जॉन विली एंड संस, न्यूयॉर्क।* ***होम्स प्रिंसिपल्स ऑफ फिज़िकल जियॉलॉजी:*** *संपादन पी. मैक. डी. डफ; प्रकाशक: चेपमैन एंड हॉल, लंदन।* ***मार्वेल्स एंड मिस्ट्रीस ऑफ द वर्ल्ड एराउंड अस:*** *प्रकाशक: रीडर्स डायजेस्ट एसोसिएशन लिमिटेड, न्यूयार्क।* ***इनसेक्ट्स ऑफ द वर्ल्ड:*** *एंथोनी वूटॉन; प्रकाशक:* ***ब्लैंड*** *फोर्ड प्रेस लिमिटेड, डोरसेट।* ***इनसेक्ट्स, द चिलड्रेन्स ट्रेज़री ऑफ नॉलेज:*** *प्रकाशक: कोडनशा लिमिटेड।* ***द लाइफ ऑन अर्थ:*** *डेविड एटनबरो; प्रकाशक: फोन्टाना एंड कोलिंस।* ***द न्यू बुक ऑफ पॉपुलर साइंस*** *खंड: दो; प्रकाशक: ग्रोलियर इंटरनेशनल।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

# संदर्भ सदस्यता अभियान

## 'संदर्भ' की सार्थकता तभी तक है जब तक उसे पढ़ने वाले हैं।

संदर्भ को आप बरसों से जानते हैं, पढ़ते हैं,
संदर्भ के लिए कुछ करने का मौका आपके पास है।
अपने आसपास के स्कूलों, कॉलेजों, शिक्षकों,
अपने मित्रों को संदर्भ के बारे मे जानकारी दीजिए।
उन्हे संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाइए।

यदि आप संदर्भ के लिए पांच वार्षिक सदस्य बनाते हैं तो एक साल तक संदर्भ आपको बतौर उपहार भेजी जाएगी। दस सदस्य बनें तो दो साल, पंद्रह बनें तो तीन साल तक।

बस आपको इतना ही करना है कि आपके द्वारा बनाए गए पांच सदस्यों का सदस्यता शुल्क, नाम एवं पते हमारे पास भेजिए।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। बैंक ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

ड्राफ्ट बनवाई या मनीऑर्डर का खर्च आप सदस्यता शुल्क में से काटकर शेष राशि भेज सकते हैं।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. 461001, फोन: 07574 - 53518
ई-मेल: eklavyahoshangabad@bigfoot.com

## उबलते पानी के चश्मे . . . . . . . . . . 9

आमतौर पर कुओं, नलकूपों से मिलने वाला पानी गर्मियों में थोड़ा ठंडा और सर्दियों में हल्का-सा कुनकुना होता है, लेकिन कुछ झरने ऐसे भी होते हैं जिनमें से उबलता हुआ या अत्यन्त गर्म पानी निकलता है। इन झरनों में ऐसा क्या होता है कि उनका पानी इतना गर्म रहता है?

## तितलियों में रंग मज़ेदार . . . . . . . . 21

तितली के रंगों को लेकर एक सामान्य धारणा यही होती है कि तितली के पंखों पर मौजूद रंजक पदार्थों की वजह से तितली रंगीन दिखती है। लेकिन अक्सर ऐसा भी होता है कि तितली के पंखों का रंग तो पीला दिख रहा होता है लेकिन उसके पंखों में कोई पीला रंजक पदार्थ है ही नहीं! है न अचरजभरी बात? तितलियों के रंगों से संबंधित और भी कई दिलचस्प पहलू पढ़िए इस लेख में।


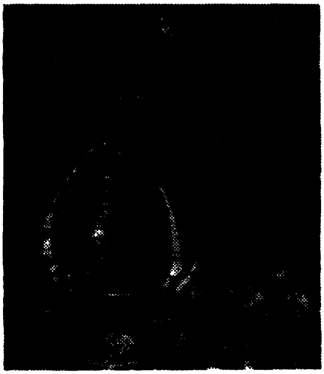

## 80 दिन में . . . . 45

हाथी खरीदकर फिलिस फॉग उनके साथी और महावत के साथ इलाहाबाद की ओर चल दिए। आधा सफर बिना व्यवधान पूरा हो गया लेकिन तत्पश्चात ज़बरदस्ती सती की जा रही एक महिला को देखकर मि. फॉग और उनके साथियों ने उसे बचाने का निश्चय किया। क्या वे अपने मिशन में कामयाब हो पाए?

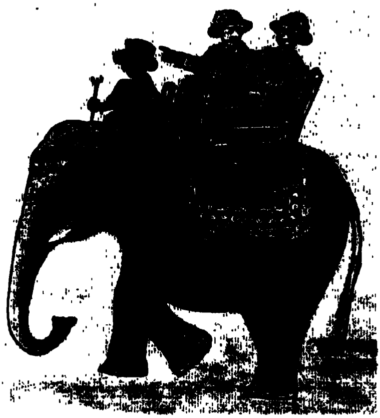

## बंगाल में इस्लाम . . . . 75

बंगाल में इस्लामीकरण की प्रक्रिया इतनी धीमी या क्रमिक थी कि इसको महसूस करना भी कठिन है। इस प्रक्रिया के तीन दिलचस्प पहलू दिखते हैं: स्थानीय धार्मिक सोच में इस्लाम का समावेश, ऐक्यारोपण और विस्थापन। वास्तव में ये तीनों शब्द इस धीमी प्रक्रिया को समझने के लिए पड़ाव मात्र हैं।

# शैक्षिक संदर्भ

अंक: 35

दिसंबर 2000-जनवरी 2001


## इस अंक में


आपने लिखा . . . . 4

उबलते पानी के . . . . 9
*संजय कुमार तिवारी*

पढ़ाने का वो तरीका . . . . 21
*नीलम भोंडे*

ज़रा सिर खुजलाइए . . . . 26

तितलियों में रंग . . . . 27
*सुशील जोशी / प्रियदर्शनी कर्वे*

सवालीराम . . . . 42

80 दिन में . . . . 45
*ज्यूल्स वर्न*

चितियों का निर्माण . . . . 61
*रामकृष्ण भट्टाचार्य*

बंगाल में इस्लाम . . . . 75
*रिचर्ड ईटन*

संतान की परवरिश . . . . 97
*के. आर. शर्मा*

# आपने लिखा

पुणे IUCAA के श्री अरविंद परांजपे ने मुझे संदर्भ की सदस्यता लेने का सुझाव दिया। खगोल शास्त्र में रुचि की वजह से मैंने उनसे संपर्क किया था। खगोल शास्त्र में मेरा अब तक जितना ज्ञान है वह मीर व प्रगति प्रकाशन की ही कुछ पुस्तकों के कारण है। मुझे यह कहते हुए बहुत ही अफसोस हो रहा है, और शायद आपने भी ऐसा महसूस किया होगा कि हमारे देश में इस प्रकार की पुस्तकों का बहुत ही अभाव है। वैज्ञानिकों और विद्वानों को चाहिए कि वे जिस विषय से संबंधित हों उस विषय की पुस्तकें लिखते रहें। यही कारण है की 'शैक्षिक संदर्भ' देखकर मुझे जो खुशी हुई वह पहले किसी अन्य विज्ञान पत्रिका को देखकर नहीं हुई थी। मैं उम्मीद करता हूं कि 'संदर्भ' का पूरे देश में प्रचार प्रसार हो पाएगा।

संदर्भ के 31वें अंक के मुखपृष्ठ ने तो मन ही मोह लिया। इस मुखपृष्ठ से संबंधित पूर्णिमा भार्गव का लेख पढ़ कर महसूस हुआ कि प्रकृति को जितना समझने की कोशिश करो वह उतनी ही ज्यादा रहस्यमयी लगने लगती है। सभी लेख बहुत अच्छे थे।

कमलेश जी का लेख 'बच्चे और उनके खिलौने' पढ़कर अपने बचपन के दिन बरबस याद आ गए जब हम भी ये सब किया करते थे।

अंक 31 में प्रदीप गोठोस्कर का लेख 'सावन का महीना और इंद्रधनुष' पढ़ा। इसे पढ़ने के बाद मुझे इंद्रधनुष बनाने का एक और तरीका याद आ गया। इस तरीके से इंद्रधनुष बनाने के लिए सावन के महीने का इंतज़ार नहीं करना पड़ेगा। बस, करना यह है कि किसी धूप वाले दिन सूरज की ओर पीठ करके खड़े हो जाइए और फिर एक स्प्रेयर में पानी भरकर अपने सामने की ओर बौछार कीजिए। आपको गिरती बूंदों में इंद्रधनुष की छटा दिखेगी। इसी तरह जलप्रपातों के पास या झरनों के पास भी इस किस्म का इंद्रधनुष दिखाई दे जाता है।

एक और बात जिस पर मैंने गौर किया है कि बारिश की रातों में अक्सर चांद के चारों ओर एक रंगीन पट्टी दिखाई देती है, जो इंद्रधनुष की तरह लगती है। मैंने चांद के आकार (लगभग आधा डिग्री) से यह अनुमान लगाया कि यह रंगीन पट्टी हमारी आंखों पर 8 डिग्री का कोण बनाती है। मैं लेखक से यह जानना चाहता हूं कि यह रंगीन पट्टी क्या है?

आसिफ अली खान
फतेहपुर, उ. प्र.

*किसी आगामी अंक में आपके सवाल का जवाब देने की कोशिश करेंगे।*

*— संपादक*

संदर्भ के अंक 33 में प्रकाशित लेख 'त्रिज्या का परिधि से संबंध' बहुत रुचि के साथ पढ़ा। पाई के विषय में इससे काफी विस्तृत जानकारी मिली, साथ ही मिस्र और ग्रीस में पाई का मान निकालने का रोचक इतिहास पता चला।

# कुछ जिज्ञासाएं रह गईं हैं. . . . .

अंक 31 में प्रकाशित लेख में इंद्रधनुष के बारे में पढ़ा। बहुत अच्छी जानकारियां प्राप्त हुईं। द्वितीयक इंद्रधनुष के बारे में पढ़कर प्रसन्नता हुई व उसे देखने की इच्छा बढ़ गई, पर कुछ जिज्ञासाएं रह गई हैं। इन सवालों को लेखक तक पहुंचाने की कृपा करें। चूंकि लेखक दूसरी भाषा के हैं अतः उन्हें सीधे पत्र लिखने में परेशानी है।

मेरा पहला सवाल यह है कि इंद्रधनुष अर्धवृत्ताकार ही क्यों दिखता है? दूसरे शब्दों में इंद्रधनुष ही क्यों, इंद्र-तलवार या इंद्र-भाला क्यों नहीं बनता? मैंने यह प्रश्न बहुतों से पूछा लेकिन कोई खास उत्तर नहीं मिल पाया। किसी ने कहा कि पृथ्वी गोल है, वायुमंडल गोल है, अतः इंद्रधनुष हमें वृत्ताकार दिखता है; लेकिन पृथ्वी के बड़े होने के कारण यह आधा दिखता है। परंतु मैंने देखा कि यदि किसी गोल बर्तन (जैसे बल्ब) में पानी भरकर इंद्रधनुष बनाएं तब भी अर्ध वृत्ताकार होता है। अतः उपरोक्त मान्यताएं सही नहीं हैं।

इंद्रधनुष के अर्धवृत्ताकार होने के बारे में मुझे ऐसा लगा कि शायद मामला तरंग दैर्ध्य से जुड़ा है। यानी जिस रंग का तरंग दैर्ध्य अधिक होगा वह कम फैलेगी व जिस रंग का तरंग दैर्ध्य कम होगा वह अधिक फैलेगी। इसी कारण रंगों का फैलाव अलग-अलग होता है – जैसे बैंगनी का कम व लाल का ज़्यादा, अतः बैंगनी रंग नीचे व लाल ऊपर होता है। मुझे लगता है कि शायद इसी कारण इंद्रधनुष अर्धवृत्ताकार होता है।

परंतु यह उत्तर भी द्वितीयक इंद्रधनुष की व्याख्या करते समय गलत सिद्ध होता है क्योंकि द्वितीयक इंद्रधनुष में बैंगनी रंग ऊपर व लाल नीचे होता है। लेखक महोदय कृपया इसका जवाब खोजकर प्रकाशित करवाएं।

यह पत्रिका वाकई लाजवाब है। मैं अपने स्थानीय स्कूल की लाइब्रेरी में इसे पढ़ता हूं।

आशीष शर्मा

अकलतारा, बिलासपुर

*संदर्भ के अंक 16 में इंद्रधनुष के आकार के बारे में चर्चा की गई है। आपके सवाल भी लेखक तक पहुंचा दिए गए हैं। जवाब मिलते ही उन्हें प्रकाशित करेंगे।*

*– संपादक*

आपसे अनुरोध है कि यदि संभव हो सके तो इस प्रकार के लेखों में प्रयोग किए गए महत्वपूर्ण तकनीकी शब्दों का अंग्रेज़ी अनुवाद भी साथ-साथ दिया कीजिए। इससे उन पाठकों को बहुत सुविधा होगी जो हिन्दी तो जानते हैं परंतु गणित अथवा विज्ञान की तकनीकी शब्दावली से मुख्यतः अंग्रेज़ी में ही परिचित हैं।

अमर फारुकी
रीडर, इतिहास विभाग,
हंसराज कॉलेज, नई दिल्ली

**अंक** 33 का मुखपृष्ठ देखकर ही लगा ज़रूर इस अंक में कुछ अत्यधिक रोचक सामग्री है। 'परिधि का त्रिज्या से संबंध' तथा 'सांप की चाल' लेख इतने रोचक लगे कि अब तक पांच-पांच बार पढ़ चुका हूं परंतु फिर भी पढ़ने का मन कर रहा है।

अरविंद कुरील
मुंबई

**अंक** 34 पढ़ा। प्रत्येक लेख न केवल सूचनापरक था बल्कि रोचक भी था। 'कांटों का घरौंदा' बहुत पसंद आया। लेख के अंत में और जानकारी के लिए आह्वान किया गया था। मैंने नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किताब 'कीट' (लेखक एस. एस. मणि। हिन्दी अनुवाद नरेंद्र सिंह चौहान) में कुछ जानकारी पढ़ी जो इस प्रकार है:

"साइकिड शलभ (क्लेनिया कैमेराई) की इल्ली कांटों और तिनकों का खोल अपनी सुरक्षा के लिए चारों तरफ बुनती है। इल्ली इस खोल के भीतर रहती हैं और जहां भी जाती है इसे साथ ले जाती है। इल्ली अपना सिर केवल भोजन करते समय ही बाहर निकालती है।"

एक बात संदर्भ से और कहनी है कि संदर्भ के लेखों के अंत में लेखकों का पूरा नाम और पता देना चाहिए। कई बार सीधा संवाद ज़्यादा द्रुत व लाभकारी होता है।

बजरंगलाल जेठू
मुकाम: जेठूवास, पोस्ट दांतरू
लक्ष्मणगढ़, सीकर, राजस्थान

**संदर्भ** एक बहुत ही रोचक, ज्ञानवर्धक एवं सभी आयुवर्ग के व्यक्तियों के लिए सर्वोत्तम प्रकाशन है। यह रीडर डाइजेस्ट के समान ही अमूल्य पत्रिका है।

ओमप्रकाश मिश्रा
73, रविन्द्र नगर
ओल्ड पलासिया, इंदौर, म. प्र.

**कृपया** वैदिक गणित के बारे में बताएं। वैदिक गणित क्या है? यह सामान्य विद्यार्थियों और प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहे विद्यार्थियों के लिए किस तरह उपयोगी हो सकता है।

सुभाष
शेरघाटी, बिहार

**अंक** 34 मिला। इसका कवर काफी आकर्षक लगा। एक छोटी-सी गलती की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहूंगा।

आपने मेरा खत 'आपने लिखा' में शामिल किया लेकिन गलती से मेरे पते में शुजालपुर की जगह शाजापुर लिखा था।

अजय नेमा
शुजालपुर, म. प्र.

**वैसे** पहली बार इस पत्रिका से रुबरु होने का मौका मिला जब अगस्त–सितंबर 2000 का अंक हाथ लगा। लेकिन अफसोस कि यह पत्रिका यहां के बुक स्टॉल पर नहीं मिलती। इस पत्रिका को लेकर मेरे कुछ सुझाव हैं: आप पत्रिका का आकार बड़ा कर दें और भीतर रंगीन चित्र दिया कीजिए। इससे यह पत्रिका जिज्ञासु पाठकों की पहली पसंद होगी।

शंकर प्रसाद तिवारी
रुद्रप्रयाग, उत्तराखंड

**मैं** कक्षा बारहवीं का छात्र हूं। संदर्भ का पुराना पाठक हूं। संदर्भ का 34 वां अंक मिला। हमेशा की तरह इस बार भी रोचक लेख थे। 'सूरज पर धब्बे.......', 'वे दौड़ते-दौड़ते उड़ने लगे?' ज्ञानवर्धक लगे।

'सूरज पर धब्बे' लेख में पेज 13 पर रह गई एक गलती की ओर आपका ध्यान खींचना चाहूंगा। पेज 13, दिए गए चित्र के साथ सूरज के केन्द्र का तापमान 15 लाख डिग्री केल्विन लिखा है। केल्विन ताप की आदर्श परिस्थितियों में आंकी गई इकाई है अतः इसके साथ डिग्री नहीं लिखा जाता। इसलिए यह कहना उचित होगा कि सूरज के केन्द्र का तापमान 15 लाख केल्विन है।

'80 दिनों में दुनिया की सैर' काफी रोमांचकारी रही।

मैंने इस पत्रिका को स्कूल के कई अध्यापकों को दिखाया। हर जगह तारीफ ही मिली। लेकिन ज़्यादातर अध्यापकों को यही शिकायत थी कि इस पत्रिका का अंग्रेज़ी संस्करण क्यों नहीं प्रकाशित होता। मैं चाहता हूं कि यह पत्रिका विज्ञान का गौरव बने अतः आशा करता हूं कि आप इस पत्रिका को लोकप्रिय बनाने के लिए इसके अंग्रेज़ी संस्करण के बारे में भी विचार करेंगे।

अगले अंक का इंतज़ार रहेगा।

कौस्तुभ सिंह जादौन
नीमच माता स्कीम, उदयपुर
राजस्थान

**अब** संदर्भ बिना इंतज़ार करवाए मिल रही है। 'कांटों का घरौंदा' बढ़िया लेख लगा। इसने मेरी कांटों के कीड़े के बारे में जिज्ञासा शांत की।

गणित की पाठ्य पुस्तक में 'पाई' के बारे में पढ़ा तो तुरंत संदर्भ निकाल कर पाई वाला लेख पढ़ा और 'पाई' को लेकर अपनी उत्सुकता को शांत किया।

सोमिल दुबे, कक्षा -8
सरवाइट कॉन्वेंट स्कूल, होशंगाबाद

**मैं** संदर्भ के मार्फत यह बताना चाहता हूं कि एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा आयोजित विद्यालय शिक्षा में नवाचार पर अखिल भारतीय प्रतियोगिता में मेरे आलेख 'बहुस्तरीय शिक्षण

परिस्थितियों से उपजा एक प्रयोग' को पुरस्कृत किया गया। यह पुरस्कार मुझे गत मार्च 2000 को प्राप्त हुआ।

यह आलेख संदर्भ के अंक 22-23 (संयुक्तांक) मार्च-जून 1998 में प्रकाशित हुआ था।

मुकेश मालवीय
पावर झंडा, ज़िला बैतूल, म.प्र.

**हम** लोग क्षेत्रीय स्तर पर गुंजार छत्तीसगढ़ मासिक बुलेटिन – शैक्षिक, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कृषि एवं स्वास्थ्य विषयों पर – जनवरी 2000 से प्रकाशित कर रहे हैं।

आपकी पत्रिका में से कुछ-न-कुछ सामग्री का इस्तेमाल हम कर रहे हैं। संदर्भ के अगस्त-सितंबर 2000 अंक में प्रकाशित लेख 'बच्चे और जंग' लेखिका शुभदा जोशी, पसंद आया। यहां पर उसका नाट्य रुपांतरण करके उसका मंचन कर रहे हैं।

हितेश हंस दीवान
पोस्ट नर्रा (बाग बहरा)
ज़िला महासमुद, छत्तीसगढ़

## सवालीराम से पूछे हैं सवाल

1. हम कहते हैं कि वायुमंडलीय गैसें निरतंर बनती रहती हैं। ओज़ोन जो हमारे वायुमंडल में है वो भी लगातार बनती होगी। फिर ओज़ोन परत में छेद कैसे बना? ओज़ोन की परत तो बनी रहनी चाहिए?
2. चांद क्या है, किसका बना है?
3. भूकंप क्या है?
4. नाखून क्या हैं, कैसे बनते हैं?
5. सेल में क्या है जिससे बल्ब जलता है?

इन सवालों को बलदेव जुमनानी, होशंगाबाद, सिपिका वर्मा, कक्षा नवमीं, इटारसी, ब्रजेश साहू एवं अन्य साथी, कक्षा सातवीं, पचमढ़ी, ने पूछा है।

यदि आपके पास इन सवालों में से किसी सवाल का जवाब हो तो कृपया हमें लिख भेजिए। इन्हें संदर्भ के आगामी अंकों में प्रकाशित किया जाएगा। – *संपादक मंडल*

# उबलते पानी के चश्मे

सजय कुमार तिवारी

पिछले दिनों मेरे एक दोस्त ने बताया कि पिपरिया के पास अनहोनी गांव में गर्म पानी का झरना है। यहां पानी इतना गर्म होता है कि आप चावल भी पका सकते हैं।

पढ़ाई के दौरान गर्म पानी के झरनों के बारे में पढ़ा तो था परन्तु यह सुनकर अचरज हुआ कि होशंगाबाद के इतने करीब एक ऐसा झरना मौजूद है। इसलिए अनहोनी जाकर इसे देखने की योजना बनाई। पिपरिया-छिंदवाड़ा मुख्य सड़क से 10 किलोमीटर अंदर अनहोनी गांव (ज़िला छिंदवाड़ा) बसा है। इस गांव को बड़ी अनहोनी भी कहते हैं। यहां लगभग 8 फुट लंबा और 8 फुट चौड़ा कुंड है जो करीब 6 फुट गहरा दिख रहा था। इस कुंड की तली से लगातार गैस के बुलबुले उठ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों पानी खौल रहा हो।

इस पानी में थर्मामीटर डालकर नापा तो पानी का तापमान 50 डिग्री सेंटीग्रेड था। इस कुंड का पानी पास के एक नाले में गिर रहा था। कुंड के पानी में हाइड्रोजन सल्फाइड की गंध भी आ रही थी।

काफी देर तक यकीन नहीं हो रहा था कि गर्म पानी का झरना भी हो सकता है! आमतौर पर कुएं, नलकूपों से मिलने वाला पानी गर्मियों में थोड़ा ठंडा और सर्दियों में हल्का-सा कुनकुना होता है लेकिन यहां तो मामला कुछ और ही था। पानी इतना गर्म था कि नहाना भी मुश्किल था।

बातों-ही-बातों में पता चला कि इस अनोखी घटना की वजह से ही इस गांव का नाम अनहोनी पड़ा। रह-रहकर मेरे दिमाग में एक सवाल कौंध रहा था कि यहां ऐसा क्या है जिससे

बिना 'गीज़र' की चर्चा किए हॉट स्प्रिंग की बात अधूरी ही रह जाएगी।

और इन दोनों को समझने के लिए शुरुआत में धरती के ऊपरी हिस्से की बनावट को थोड़ा बहुत समझना होगा। पहली बात तो यह कि इस धरती को बनाने वाली चट्टानों में से कुछ चट्टानें अपनी बनावट के आधार पर खुद में से पानी को पूरी तरह रिसने देती हैं, कुछ पानी को बहुत ही कम रिसने देती हैं, और कुछ चट्टानें पानी को एकदम ही रिसने नहीं देती। चट्टानों के इन गुणधर्मों की वजह से धरती की ऊपरी सतह तथा अंदरुनी हिस्सों को बनाने वाली चट्टानें पारगम्य या अपारगम्य परतों को बनाती हैं। पारगम्य यानी जिस में से पानी रिस जाए। इन अलग-अलग परतों की वजह हो यह कतई ज़रूरी नहीं है, इस दर में थोड़ी घट-बढ़ तो होती ही है। जैसे ध्रुवीय प्रदेशों या लगातार बर्फ की चादर से ढंके इलाकों में तापमान वृद्धि की यह दर 32 मीटर के हिसाब से नहीं चलती। इसी तरह ज्वालामुखी सक्रियता वाले इलाकों में भी हर 32 मीटर की गहराई वाली दर के हिसाब से तापमान नहीं बढ़ता।

यह सब जानकारी यहां देना इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि इससे आगे आपको उबलते पानी के चश्मों को समझने में मदद मिलने वाली है।

जैसा कि अभी चर्चा हुई कि धरती के नीचे पारगम्य और अपारगम्य किस्म की चट्टानी परतें होती हैं। पारगम्य परतों से तो बरसाती पानी रिसता हुआ काफी गहराई तक जा सकता है

# झरनों के लिए परिस्थितियां

**झरनों के रूप में भूमिगत जल पुनः धरातल पर आता है। धरातल के नीचे किसी स्थान विशेष पर पानी का काफी जमाव हो जाता है। इस पानी को पुनः सतह पर आने के लिए कुछ खास परिस्थितियां ज़रूरी हैं। यदि वे परिस्थितियां बन गई तो झरना बनता है। नीचे दिए चित्र के माध्यम से कुछ परिस्थितियों को दिखाने की कोशिश की गई है:**

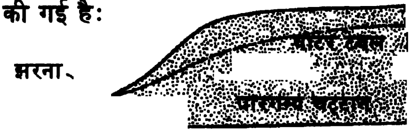


चित्र-1

**चित्र–1 : पानी का आसानी से रिसाव हो सकने वाली एक चट्टान में इतना पानी इकट्ठा हो गया कि उस चट्टान में वाटर टेबल (डॉटेड लाइन) धरातल से ऊपर चला गया फलस्वरूप पानी झरने के रूप में बाहर निकलने लगा है।**

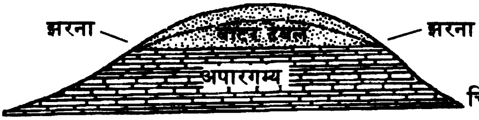


चित्र-2

**चित्र–2: यहां दिखाई पहाड़ी स्थलाकृति में भी नीचे अपारगम्य परत है और ऊपर पारगम्य चट्टानी परत है। पारगम्य परत में मौजूद पानी रिसकर नीचे जाता है और अपारगम्य परत के पास से बाहर निकलने लगता है।**

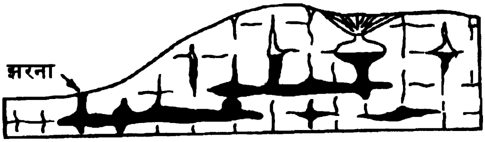


चित्र-3

**चित्र–3: कैल्शियम कार्बोनेट से बनी चट्टानों के हिस्से पानी में घुलनशील होने के कारण कई बार लंबी-लंबी नलियां/दरारें बन जाती हैं। इन दरारों में पानी जमा होता जाता है। जैसे ही सतह के पास खुलने वाली दरार मिल जाती है, पानी झरने के रूप में बाहर निकल जाता है।**

लेकिन जैसे ही कोई अपारगम्य परत आ जाए तो पानी का रिसाव बंद हो जाता है। यदि इन अपारगम्य परतों में दरारें हों तो पानी और भी गहराई तक जा सकता है। आमतौर पर अवसादी चट्टानें (Sedimentary Rocks) पारगम्य होती हैं और मैग्मा-लावा से बनी या कायांतरित चट्टानें (Metamorphic Rocks)अपारगम्य होती हैं। अवसादी चट्टानें धरती की

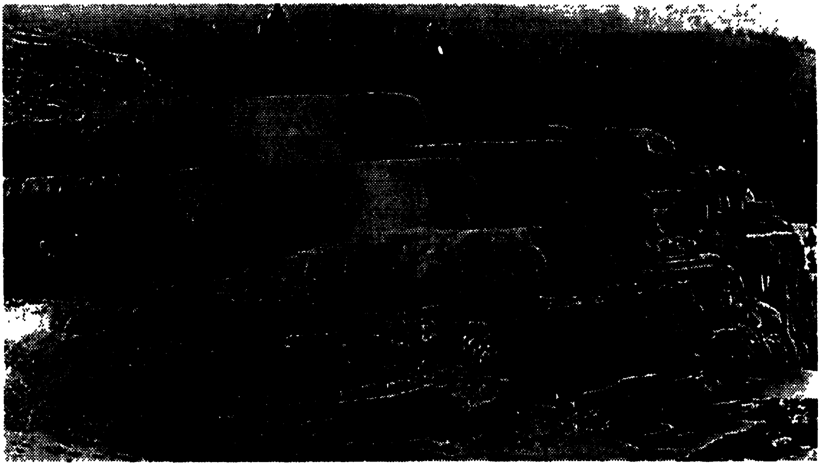

**हॉट स्प्रिंग और गेसराइट:** येलोस्टोन नेशनल पार्क, अमरीका का यह प्रसिद्ध हॉट स्प्रिंग है। इसमें बाहर निकलने वाले पानी में काफी मात्रा में खनिज घुले होते हैं। बाहर निकलने पर इस पानी से खनिज पदार्थों का निक्षेपण (Deposition) होने लगता है। आमतौर पर ये निक्षेप गीज़र या हॉट स्प्रिंग के छेद के आसपास कीप जैसी या सीढ़ीनुमा आकृति बनाते हैं। 'मैमथ हॉट स्प्रिंग' में निक्षेपों ने सीढ़ीनुमा आकृति की रचना की है। पानी में सामान्यत: कैल्शियम कार्बोनेट, सिलिका घुली होती है और इन निक्षेपों को सिलिका सिन्टर या गेसराइट कहा जाता है।

सतह पर तो खूब फैली हैं लेकिन जैसे-जैसे गहराई में जाते हैं वहां सिर्फ लावा-मैग्मा से बनी चट्टानों का बोलबाला है। यानी धरती की सतह पर बहने वाला पानी एक हद तक तो रिसता हुआ गहराई में चला जाता है लेकिन उसके बाद अपारगम्य परतों को पार नहीं कर पाता। इन अपारगम्य परतों में काफी सारी दरारें होती हैं। इन परतों में टूट-फूट भी लगातार चलती रहती है जिससे इन्हें पार किया जा सकता है। इस तरह पानी रिसता हुआ 2-3 किलोमीटर तक तो जा ही सकता है। लेकिन सभी जगह पानी इतनी गहराई तक पहुंच जाए ऐसा ज़रूरी नहीं है।

अब हम अपने शुरुआती सवाल की ओर लौट सकते हैं कि ज़मीन के नीचे से गरम पानी के झरने कैसे फूटते हैं। यह बात तो एकदम साफ है कि धरती की सतह के नीचे कोई-न-कोई उष्मा का स्रोत है जो रिसकर पहुंच रहे पानी को काफी गरम कर देता है। धरती में गहराई पर जाने

पर औसतन हर 32 मीटर पर एक डिग्री तापमान बढ़ता है, इस दर से पानी का तापमान 50-60 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ाने के लिए एक-डेढ़ किलोमीटर नीचे जाना होगा। दूसरी संभावना यही है कि गरम मैग्मा का कोई छोटा चैम्बर धरती की ऊपरी सतह के काफी करीब है जो अपने आसपास की चट्टानों को भी गरम कर देता है। आमतौर पर ऐसे मैग्मा का तापमान 350 डिग्री सेंटीग्रेड या इससे भी ज़्यादा होता है। यदि रिसता हुआ पानी इस गरम मैग्मा या इसके आसपास की गरम चट्टानों के सम्पर्क में आ जाए तो इस पानी का तापमान बढ़ने लगता है। इस तरह के कम गहराई में पाए जाने वाले मैग्मा चैम्बर ज्वालामुखी की सक्रियता वाले इलाकों में तो बहुतायत में होते ही हैं लेकिन उन इलाकों में भी मिलते हैं जहां

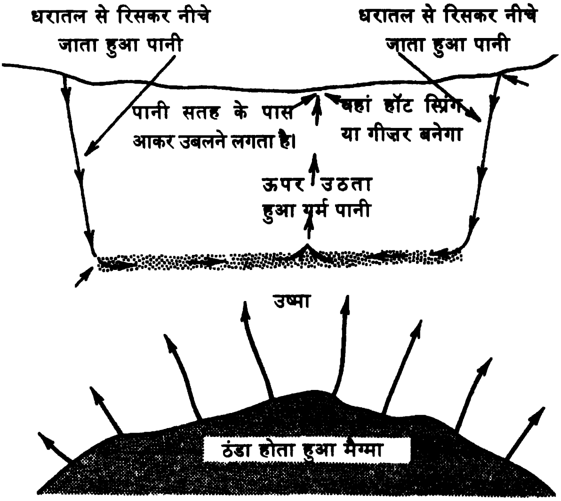


**पानी गरम कैसे होता है:** धरती की सतह पर बहने वाला पानी पारगम्य चट्टानों से रिसता हुआ गहराई में पहुंच गया है। यहां नीचे मैग्मा का एक चैम्बर है जो आसपास की चट्टानों को गरम कर रहा है। इन गरम चट्टानों के सम्पर्क में आने से पानी अतितप्त हो जाता है। वह अपने सामान्य उबालबिन्दु से भी कहीं ज़्यादा गरम हो चुका होता है। जब यह पानी ऊपर की ओर उठता हुआ भूसतह के करीब आता है तब भी यह उबल रहा होता है क्योंकि यह पानी जैसे-जैसे ऊपर उठता है दबाव कम होने की वजह से इसका उबाल बिन्दु भी कम होता जाता है। यह पानी धरातल पर गीज़र या हॉट स्प्रिंग के रूप में दिखाई देता है।

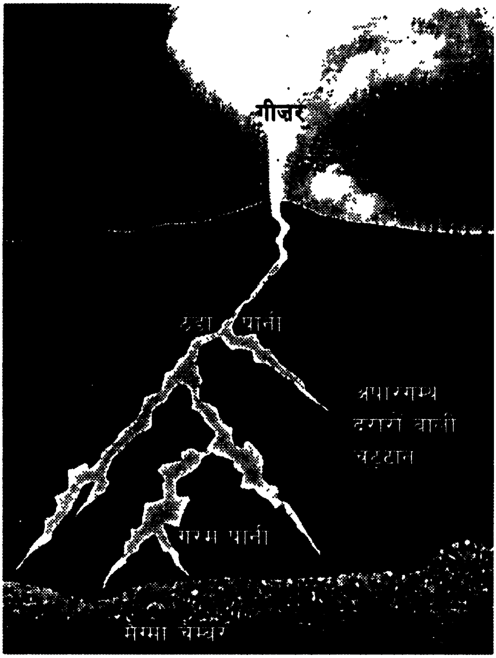


**गीज़र का फूटना:** एक गीज़र के लिए ज़रूरी सभी बातें यहां दिखाई दे रही हैं। लेकिन फिर भी गीज़र तभी फूटता है जब ऊपर का ठंडा पानी निचले हिस्से के पानी पर काफी दबाव बना सके। इस दबाव की वजह से ही नीचे का पानी अतितप्त होता है और वह दबाव बना पाने में कामयाब होता है जो पानी को ऊपर उछाल सके।

वर्तमान समय में कोई भी ज्वालामुखी सक्रियता दिखाई नहीं देती।

अब इस बात की काफी संभावना है कि रिसता हुआ पानी उष्मा के इस स्रोत के सम्पर्क में आ जाए। ऐसे में पानी धीरे-धीरे गरम होता जाता है और बाहर निकलने के रास्ते खोजता हुआ पुनः धरातल पर आ जाता है। चूंकि धरातल पर आया यह पानी अभी भी काफी गरम है इसलिए इसे गरम पानी का झरना कहते हैं।

ऐसे झरनों में से एक मैंने अनहोनी में देखा जहां पानी का तापमान 50 डिग्री सेंटीग्रेड था। इसी तरह दुनिया भर में पाए जाने वाले ऐसे झरनों में पानी का तापमान 40 से 90 डिग्री सेंटीग्रेड तक हो सकता है। पानी का तापमान उष्मा स्रोत की गहराई, पानी की उपलब्धता आदि बातों पर निर्भर करता है।

इस प्रकृति में बहुत विविधता और रोचकता है; इसलिए गरम पानी के झरनों वाली परिस्थितियों में थोड़ा बदलाव हो जाए तो आप गरम पानी के चश्मों के एक बदले हुए रूप – गीज़र का लुत्फ भी उठा सकते हैं।

गीज़र में मुख्यतः होता यह है कि काफी सारा गर्म पानी, भाप व अन्य गैसें तेज़ आवाज़ के साथ धरातल से किसी छेद से होती हुई बाहर निकलती हैं। पानी की धार कुछेक मीटर से 100 मीटर तक उछलती है, बिल्कुल

दीपावली में चलाए जाने वाले अनार की तरह। पानी की धार के उछाल को ही देखकर आप अंदाज़ लगा सकते हैं कि नीचे गहराई में कितना भीषण दबाव बन रहा होगा।

थोड़ी देर के लिए विज्ञान-सिद्धांत को दरकिनार भी कर दें तो गीज़र को देखना काफी सुखद लगता है। ऐसे गीज़र दुनिया में येलोस्टोन नेशनल पार्क अमेरिका, आइसलैंड और न्यूज़ीलैंड में काफी तादाद में मिलते हैं और खूब सारे पर्यटक इस अद्‌भुत नज़ारे को देखने जाते हैं।

गीज़र में एक और अनोखी बात

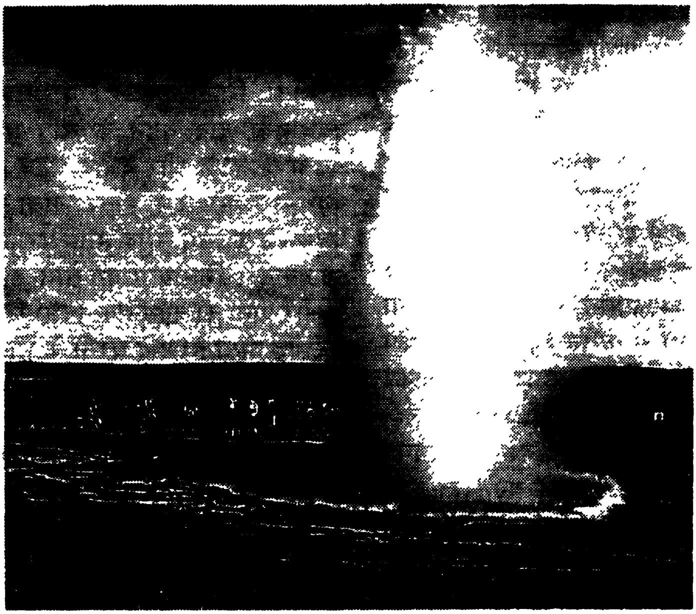

**गीज़र: यदि हकीकत में गीज़र देखना हो तो आइसलैंड, अमेरिका, न्यूज़ीलैंड, रूस जैसी जगहों पर जाना होगा जहां एक विशेष अंतराल के बाद फूटने वाले गीज़र पाए जाते हैं। चित्र में आइसलैंड का एक गीज़र है जिसे देखने के लिए काफी संख्या में पर्यटक मौजूद हैं।**

**वैसे यहां यह भी बता देना चाहिए कि न्यूज़ीलैंड में 'वायरोआ गीज़र' में पानी की धार किसी समय 60 मीटर की ऊंचाई तक उछलती थी लेकिन अब यह गीज़र तभी काम करता है जब गीज़र नली में साबुन का पानी डाला जाए। जब काफी पर्यटक वहां इकट्ठा हो जाते हैं तब इसकी गीज़र नली में साबुन का पानी उड़ेला जाता है और पर्यटक गीज़र का आनंद लूटते हैं।**

यह है कि यह एक निश्चित समयावधि के बाद दुबारा पानी की धार को उछालता है। इसलिए एक मोटा-मोटा अंदाज़ तो लगाया जा सकता है कि अगली बार गीज़र में से पानी कब उछलेगा। वैसे उस क्षेत्र में होने वाली वर्षा तथा धरती के भीतरी परिवर्तनों की वजह से दो गीज़र उछालों के बीच के अंतराल में बदलाव होता रहता है। साथ ही पानी की धार कितने मीटर तक उछलेगी इस पर भी प्रभाव पड़ता है। येलोस्टोन पार्क के सबसे मशहूर गीज़र 'ओल्ड फेथफुल' की लगातार निगरानी से पता चला कि ओल्ड फेथफुल में दो विस्फोटों यानी फव्वारों के बीच की समयावधि 65 मिनट होती थी। अगस्त 1959 में मोंटाना (जो यहां से करीब है) में आए भूकंप से कुछ पहले यह समयावधि घटकर 60-62 मिनटों के बीच झूलती रही और भूकंप के बाद यह 68 मिनट तक पहुंच गई। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि ज़मीन के नीचे चल रही हलचलों से गीज़र के समय अंतराल पर प्रभाव पड़ता है। इसी तरह यह भी देखा गया है कि ओल्ड फेथफुल में पानी की धार 115 फुट से 150 फुट की ऊंचाई तक उछलती है।

यहां तक आते-आते आपके दिमाग में भी यह सवाल कौंध रहा होगा कि वे कौन-सी परिस्थितियां हैं जो तय करती हैं कि किसी जगह विशेष पर गीज़र बनेगा या गरम पानी का चश्मा। गीज़र और हॉट स्प्रिंग में प्रमुख अंतर यही है कि जहां हॉट स्प्रिंग में पानी सामान्य झरनों की तरह धरातल पर आता है; वहीं गीज़र में काफी दबाव और विस्फोट के साथ ऊंची धार फेंकते हुए निकलता है।

लगभग 100 साल पहले रॉबर्ट विलियम बुनसन ने गीज़र के बारे में एक सिद्धांत पेश किया जिसे अभी भी मान्यता मिली हुई है। पानी का क्वथनांक, दाब बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता जाता है और दबाव घटने पर क्वथनांक भी कम होता जाता है। उदाहरण के लिए समुद्र सतह पर हवा का दबाव 1 किलोग्राम/वर्ग सेमी होता है और पानी का क्वथनांक 100 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। यदि धरती के भीतर 30 फुट की गहराई में जाएं तो वहां दबाव 2 किलोग्राम/वर्ग सेमी होता है और पानी 120 डिग्री सेंटीग्रेड पर उबलता है।

यदि धरातल पर बहने वाला पानी रिसते हुए गहराई में चला जाए तो वहां दबाव के हिसाब से उसका उबाल बिन्दु भी प्रभावित होगा। अगर रिसता हुआ पानी मैग्मा या किसी गर्म चट्टान के सम्पर्क में आ जाए तब भी यह एकदम उबलने नहीं लगेगा।

हम सबने पढ़ा है कि पानी में संवहन चक्र बनने से पूरा पानी गर्म होता है यानी पहले नीचे का पानी

गरम होता है, फिर यह गरम पानी ऊपर जाता है और ऊपर का ठंडा पानी नीचे आता है।

लेकिन धरती के अंदर चट्टानों के रवों के बीच की जगह या बेहद संकरी दरारों की मौजूदगी में इस तरह का संवहन चक्र बन पाना अक्सर खासा मुश्किल है। (यहां यदि हम गीज़र नली को एक सीधे कॉलम की तरह मानें तो समझने में सुविधा होगी।) इसलिए पानी से भरी इन दरारों में नीचे का पानी बेहद गर्म हो जाता है लेकिन ऊपर का पानी ठंडा बना रहता है। नीचे के पानी पर ऊपरी पानी का काफी दबाव भी होता है जिससे नीचे के पानी का उबाल बिन्दु भी बढ़ जाता है। नीचे का पानी गर्म होते-होते अतितप्त हो जाता है। वहां बन रही भाप बाहर निकलने का रास्ता खोजने लगती है और आखिरकार तंग दरारों के पानी को ऊपर की ओर धकेलने की कोशिश करती है। इस दौरान ऊपरी हिस्से का पानी भी गरम होने लगता है। गरमी के कारण प्रसार और नीचे से लग रहे दबाव के फलस्वरूप पानी और भाप तेज़ आवाज़ और विस्फोट के साथ झटके से निकलना शुरू करते हैं। गीज़र नली में जितना अधिक दबाव बना होगा उस हिसाब से पानी की धार उछलती है।

एक बार पानी निकल जाने के बाद गीज़र नली में दबाव कम हो जाता है। फिर से गीज़र नली में रिसाव से पानी इकट्ठा होता है, पानी की निचली परत गरम होती है, और विस्फोट के साथ पानी बाहर निकल जाता है। यही क्रिया बार-बार दोहराई जाती है।

गीज़र बनने के लिए तीन प्रमुख शर्तों का पूरा होना ज़रूरी है:

1. सतही चट्टानों के नीचे मैग्मा की मौजूदगी जो अपने आसपास की चट्टानों को पर्याप्त रूप से गरम कर दे।
2. सतही चट्टानों में पर्याप्त मात्रा में तंग, संकरी नलीनुमा दरारें हों। इन नलियों की दीवार काफी मज़बूत हो, जो काफी दबाव सह सके।
3. गीज़र नली के निचले हिस्से तक पर्याप्त मात्रा में भूमिगत पानी पहुंच सके; ताकि भाप बन पाए, दबाव का निर्माण हो और गीज़र पानी को ऊंचाई तक उछाल सके।

इन तीन शर्तों से आप इस बात को बखूबी समझ सकते हैं कि किन परिस्थितियों में हॉट स्प्रिंग बनेगा और कब गीज़र।

मान लीजिए भूमिगत पानी काफी कम मात्रा में मैग्मा चैम्बर तक पहुंच पा रहा है। ऐसी स्थिति में पानी की जो भी मात्रा उष्मा के स्रोत तक पहुंच रही है वह तुरंत वाष्प में परिवर्तित

**धुंआरा: आइसलैंड काफी विरोधाभासों वाला देश है। एक ओर जहां इसका बड़ा भूभाग बर्फ से ढंका है वहीं ज्वालामुखीय हलचलों की भी कमी नहीं है। यहां हज़ारों गीज़र, गर्म पानी के चश्मे, धुंआरे बिखरे हुए हैं। चित्र में एक धुंआरा दिखाई दे रहा है। धरातल के एक छेद से पानी की भाप निकल रही है। आइसलैंड में ऊर्जा के इन स्रोतों का इस्तेमाल बिजली बनाने, मकानों को गर्म रखने, बागवानी करने जैसे कामों में किया जाता है।**

हो जाएगी और दरारों से होती हुई किसी छेद के मार्फत बाहर निकल जाएगी। धरती की सतह पर ऐसे छेदों को धुंआरा (Fumarole) कहते हैं। ऐसे छेदों से भाप के अलावा कार्बन डाइ ऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसें भी निकलती रहती हैं।

एक दूसरी परिस्थिति में भूमिगत जल पर्याप्त मात्रा में नीचे पहुंच रहा है लेकिन उष्मा का स्रोत पानी को उबाल बिन्दु तक नहीं पहुंचा पा रहा है। या गीज़र नली में बन रही भाप इतना दबाव नहीं बना पा रही हो कि पानी और भाप तेज़ आवाज़ और ऊंची धार के साथ बाहर निकल पाएं। तो ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि गर्म पानी का सोता या झरना बनेगा जिसमें से धरती की सतह पर सतत गरम पानी बहता रहता है।

इतनी चर्चा हो जाने के बाद यदि भूतापीय ऊर्जा की बात न हो तो बात कुछ अधूरी-सी लगती है। धरती के भीतर काफी उष्मा है लेकिन हमारी वर्तमान ड्रिलिंग तकनीक को देखते

कैलिफोर्निया की इस घाटी में 1960 के पहले सिर्फ प्राकृतिक गीज़र ही देखे जा सकते थे लेकिन एक बार जब यह पता चला कि इन गीज़र से बिजली बनाई जा सकती है तो यहां बिजली बनाने वाली कम्पनियां टूट पड़ी। 1976 में इस इलाके से 500 मैगावाट बिजली का निर्माण हो रहा था तो 1990 तक इस उत्पादन क्षमता में 200 मैगावाट का इज़ाफा कर लिया गया था। जहां कभी समय-समय पर फूटने वाले गीज़र होते थे वहां अब 24 घंटे भाप फेंकने वाले छेद और टरबाइन नज़र आते हैं।

हुए धरती में गहराई तक छेद कर पाना संभव नहीं लगता। इसलिए यदि धरातल से काफी करीब कुछ मैग्मा चैम्बर या अति गर्म चट्टानों की मौजूदगी का पता चलता है तो इस ऊर्जा के दोहन की कोशिशें होने लगती हैं। हमारे पास भूतापीय ऊर्जा के रूप में भाप, गरम पानी और सूखी गर्म चट्टानें उपलब्ध हैं। इनसे भाप के ज़रिए बिजली का निर्माण किया जाता है। गरम पानी से बिजली बनाने की कोशिशों के साथ ठंडे इलाकों में मकानों को गरम रखने या बागवानी के लिए गरम वातावरण देने जैसे काम किए

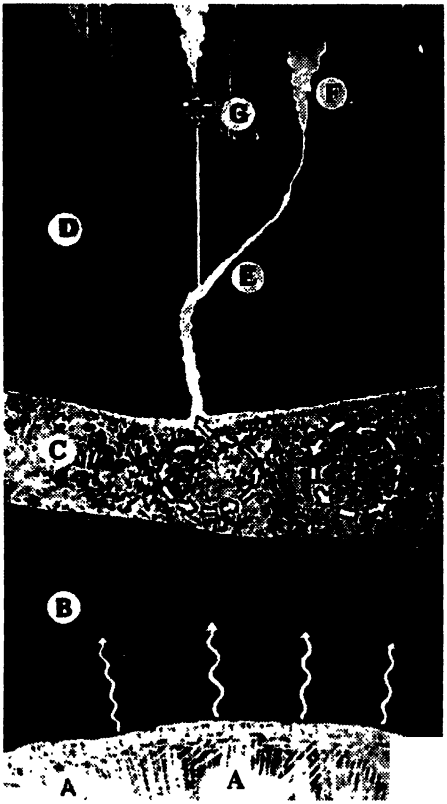


**भूतापीय ऊर्जा से बिजली बनाना: यहां 'A' एक मैग्मा चैम्बर है जो ठंडा हो रहा है। इस ठंडे होने की प्रक्रिया में वह अपनी उष्मा आसपास की चट्टानों को दे रहा है। इसके ठीक पास में 'B' चट्टान है जो काफी गर्म हो गई है। इस 'B' चट्टान के ठीक ऊपर एक पारगम्य परत 'C' है। इस परत में काफी सारा पानी है। इस पारगम्य परत का पानी गरमी पाकर उबलने लगा है। इस पारगम्य परत के ऊपर अपारगम्य परत 'D' है जिसमें काफी सारी दरारें हैं। इन दरारों में से एक दरार 'E' से भाप और पानी सतह पर आता है जो गीज़र या हॉट स्प्रिंग 'F' बनाता है।**

**अब इस पूरे तंत्र का अध्ययन करके 'G' से एक ड्रिलिंग करके गीज़र नली तक पहुंचा जाता है। यहां गर्म भाप को काबू में लेकर 'G' पर एक बिजली घर का निर्माण कर सकते हैं।**

जाते हैं। सूखी गरम चट्टानों के इस्तेमाल के तरीके अभी विकसित हो रहे हैं लेकिन इसका इस्तेमाल भी बिजली बनाने में ही किया जा रहा है।

यदि हम इनको चलाने के तरीकों पर न भी जाएं तब भी यह तो कह सकते हैं कि दुनिया में ऊर्जा स्रोतों के इस्तेमाल को लेकर जो वाद-विवाद चल रहे हैं उनमें भूतलीय ऊर्जा शायद एक बेहतर विकल्प बन पाए। लेकिन लाभ-हानि का गुणा-भाग तो आने वाला वक्त ही बताएगा।

**संजय कुमार तिवारी: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में कार्यरत।**

# पढाने का वो तरीक

नीलम भोंडे

**सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई को विद्यार्थी बोरियत भरा मानते हैं। लेकिन यदि शिक्षक इस विषय को थोड़ा लीक से हटकर पढ़ाएं तो ज़रूर बोरियत खत्म हो सकती है।**

मैं होशंगाबाद के नवोदय विद्यालय में पढ़ती थी। नवोदय विद्यालय की अपनी एक परम्परा है कि वहां पढ़ने वाले विद्यार्थियों को दो साल किसी दूसरे राज्य में जाकर पढ़ना होता है। हमें नवोदय विद्यालय कुकनूर (ज़िला रायचूर) कर्नाटक में जाकर पढ़ना था। इस परम्परा के तहत हम 9वीं कक्षा से ही कुकनूर आ गए थे। नई जगह, नए माहौल में एक साल किस तरह गुज़र गया पता ही न चला। फिर आ गई 10वीं की बोर्ड परीक्षा। बोर्ड परीक्षा होने के कारण मैंने पहले से ही पढ़ाई पर विशेष ध्यान देना शुरू कर दिया था। खासकर गणित और विज्ञान पर क्योंकि शिक्षकों/विद्यार्थियों की यह धारणा होती है कि गणित और विज्ञान अन्य विषयों की अपेक्षा कुछ कठिन होते हैं। अन्य विषयों में अंग्रेज़ी और हिन्दी तो छात्रों को सरल ही लगते हैं और इन विषयों में कुछ विशेष तैयारी की ज़रूरत भी नहीं होती। बचता है सामाजिक अध्ययन, जो छात्रों को अक्सर बोरियत भरा लगता है और इसमें तीन विषय भी पढ़ने पड़ते हैं – इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र। सामाजिक अध्ययन को लेकर विद्यार्थियों में अक्सर अरुचि ही रहती है। हमें भी लगता था कि पता नहीं तीनों विषयों की एक साथ तैयारी कैसे करेंगे? इतना समय कैसे निकालेंगे? मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। हमारी सारी चिंताएं फिजूल थीं। हमारे सामाजिक अध्ययन के अध्यापक दत्तात्रेय जी बिल्कुल अलग थे। उनकी पढ़ाने की शैली भी कुछ हटकर थी, जो छात्रों को बहुत भाती थी। कक्षा में उनका पहला

पीरियड था क्योंकि वे हमारे कक्षा शिक्षक भी थे। वैसे तो, वे थोड़े सख्त मिजाज़ के व्यक्ति थे मगर छात्रों से काफी सहृदयता से पेश आते थे। उन्होंने हमें पहले ही बता दिया था कि कक्षा के अलावा हमें रोज़ शाम दो घंटे के लिए विद्यालय आना होगा और सामाजिक अध्ययन पढ़ना होगा। चूंकि हमारा विद्यालय आवासीय विद्यालय था इसलिए दो घंटे अतिरिक्त आकर पढ़ना हमारे लिए मुश्किल नहीं था। हमारे विद्यालय में सामाजिक अध्ययन के लिए संग्रहालय भी था। इसमें विभिन्न मॉडल, चित्र, मानचित्र और विषय से संबंधित सामग्री व जानकारी रहती थी। संग्रहालय में ग्लोब, ज्वालामुखी, ग्रामीण जन-जीवन आदि के मॉडल मौजूद थे।

इनमें से कुछ मॉडल तो छात्रों द्वारा ही तैयार किए जाते थे। कभी-कभी हमारी कक्षा संग्रहालय में भी लगती थी। वहां हमें अध्यापक चित्रों एवं मानचित्रों की सहायता से पढ़ाया करते थे।

कक्षा को हमारे अध्यापक ने विभिन्न समूहों में विभाजित किया था। प्रत्येक समूह में पांच विद्यार्थी होते थे। पांच विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी होशियार होता था, दो विद्यार्थी औसत और दो विद्यार्थी कुछ कमज़ोर होते थे। जब हम शाम को 6 बजे वापस विद्यालय जाते थे, तब हम अपने समूहों में बैठते थे। फिर हमारे अध्यापक हमें इतिहास, भूगोल या नागरिकता से संबंधित प्रश्न दिया करते थे, जिनके जवाब किताब से ढूंढकर समूहवार आपस में चर्चा करनी होती थी। जो छात्र पढ़ने में कमज़ोर होते थे उन्हें वे जवाब लिखकर अध्यापक को देने होते थे, जिसमें समूह के अन्य लोग भी मदद किया करते थे। ये तरीका छात्रों को आकर्षित भी करता था और मज़ेदार भी लगता था।

## इतिहास कुछ ऐसा

इतिहास में 'भारतीय सांस्कृतिक धरोहर' एक अध्याय था जिसमें विभिन्न राजाओं द्वारा बनवाए गए मंदिरों एवं वास्तुकला के बारे में जानकारी थी। अगर हमारे अध्यापक कक्षा में उस अध्याय को पढ़ते और हम सुनते ही रहते तो ज़रूर बोर हो जाते। लेकिन हमारे अध्यापक ने इस अध्याय को एक अलग तरीके से पढ़ाया। विद्यालय के संग्रहालय में एक प्रोजेक्टर मौजूद था और विभिन्न स्लाइड्स भी थीं। ये स्लाइड्स राजाओं द्वारा निर्मित भवनों, महलों और मंदिरों तथा विभिन्न वास्तुकला के नमूनों से संबंधित थीं। हमारे अध्यापक हमें

इन स्लाइड्स को प्रोजेक्टर द्वारा दिखाते और फिर इनके बारे में बताते थे। इस तरह से विभिन्न वास्तुकला के नमूनों को प्रोजेक्टर की सहायता से समझना और उनकी विशेषताओं को विस्तारपूर्वक अध्यापक द्वारा समझाना, ये बात सभी विद्यार्थियों को आकर्षित करती थी।

अब इतिहास जैसा बोर विषय विद्यार्थियों को रुचिपूर्ण लगता व मनोरंजक भी। हमारे अध्यापक हमें मैसूर, श्रीरंगपट्टन तथा हम्पी लेकर गए जहां पुराने महल एवं मंदिर हैं। इससे हमें वास्तुकला को प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिला। जब हम संग्रहालय में स्लाइड्स द्वारा मंदिरों, महलों आदि को देखते तब अध्यापक हमें उन्हें पहचानने के लिए भी कहते। इससे विद्यार्थियों की उत्सुकता और बढ़ जाती।

## भूगोल की पढ़ाई

भूगोल में विभिन्न बांध, अभ्यारण्य आदि से संबंधित एक अध्याय था। हमारे अध्यापक के पास इन विषयों से संबंधित ऑडियो केसेट्स थे। अध्यापक ने हमें इस विषय से संबंधित जानकारी कक्षा में पहले ही दे दी, बाद में संग्रहालय में शांतिपूर्वक बैठकर इन ऑडियो टेप को सुनकर, महत्वपूर्ण जानकारियों को अपनी कॉपियों में लिखने के लिए कहा। इस तरह यह विषय भी काफी रोचक बन गया और हमें ऐसी जानकारी मिली जो पाठ्यपुस्तक में मौजूद नहीं थी। इसके बाद अध्यापक ने हमें अभ्यारण्य से संबंधित कुछ स्लाइड्स भी दिखाई।

भूगोल-इतिहास में मानचित्र से संबंधित प्रश्न पूछे जाते थे। ये हमेशा संभव नहीं हो पाता था कि पूरा मानचित्र ब्लैक-बोर्ड पर बनाया जाए। हमारे अध्यापक हमें मानचित्र भी प्रोजेक्टर की सहायता से ही पढ़ाया करते थे। इससे छात्रों को समझने में आसानी होती थी। इस तरह भूगोल में भी अच्छे से तैयारी हो जाती। बाकी बचे अध्याय हम लोग सामूहिक चर्चा द्वारा तैयार किया करते थे।

## चुनाव आयोग, पार्टी, मतदान

नागरिकता में विभिन्न अध्याय थे जिनमें निर्वाचन, न्यायपालिका, विधानसभा एवं लोकसभा आदि प्रमुख थे। ये सभी अध्याय हमें अध्यापक द्वारा प्रयोगात्मक तरीके से पढ़ाए गए। हमारे अध्यापक का ये प्रयोगात्मक तरीका काफी कारगर साबित हुआ। जैसे निर्वाचन अध्याय को पढ़ाने के लिए अध्यापक ने हमारी कक्षा में निर्वाचन कराया।

सबसे पहले कक्षा के ही छात्रों में से पार्टियों का गठन किया गया, जिनमें से दो पार्टियां लड़कों की थीं और दो लड़कियों की। चारों पार्टियों के पार्टी अध्यक्ष बनाए गए व उनके नाम तथा चुनाव चिन्ह भी निर्धारित किए गए। कक्षा के अन्य छात्र किसी भी पार्टी को मत देने के लिए मुक्त थे। किसी को कोई बंधन नहीं था कि कौनसी पार्टी के सदस्य बनो। इस प्रक्रिया के दौरान सभी छात्र उपस्थित थे, सभी में उत्साह था। चुनाव के लिए खड़े प्रत्याशियों के लिए पोशाक निर्धारित की गई, लड़कियों के लिए साड़ी एवं लड़कों के लिए धोती एवं कुर्ता (सामान्यत: हमारे यहां नेता लोग यही पोशाक पहनते हैं)। तत्पश्चात निर्वाचन की तारीख निश्चित की गई। चुनाव आयोग का भी गठन किया, जिसमें अन्य कक्षाओं के विद्यार्थियों को भी लिया गया।

अध्यापक ने कक्षा में पहले ही निर्वाचन प्रक्रिया से संबंधित सारी जानकारी एवं आवश्यक बातें लिखवा दी थीं। फिर जोर-शोर से प्रचार कार्य आरंभ हुआ। हमारे विद्यालय में कम्प्यूटर भी मौजूद थे, इसलिए कम्प्यूटर से बैनर, प्रचार-पत्र एवं मतपत्र बनाए गए। चुनाव प्रक्रिया को विद्यालय के सभागृह में आयोजित किया गया था जिसे देखने के लिए विद्यालय के प्राचार्य, शिक्षक एवं अन्य कक्षाओं के सभी विद्यार्थियों को आमंत्रित किया गया था। प्रचार की समय सीमा समाप्त होने से पूर्व सभी पार्टियों की रैली निकाली गई। तत्पश्चात पार्टी अध्यक्ष ने अपने अपने भाषण दिए व लोगों को अपना एजेंडा सुनाया। फिर आरंभ हुआ चुनाव का कार्य।

गुप्त मतदान के लिए एक अलग जगह बनाई गई थी जहां मतपेटी रखी हुई थी। मतपत्रों पर उम्मीद्वारों के नाम एवं चुनाव चिन्ह अंकित थे। एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि केवल दसवीं कक्षा के छात्र ही मतदान करने के पात्र थे। सभी मतदाता कतार में खडे थे। वहां पर एक पीठासीन अधिकारी को बैठाया गया था जिसके पास मतदाताओं के नाम की सूची थी। प्रत्येक मतदाता बारी-बारी से अपना-अपना मत दे रहा था। पूरी प्रक्रिया शांतिपूर्वक हो रही थी। साथ में सभी विद्यार्थी इस प्रक्रिया को भी समझ रहे थे। इस तरह मतदान पूर्ण हुआ। मतपेटी को संपूर्ण सुरक्षा के साथ सुरक्षित स्थान तक ले जाया गया। ऐसा केवल सुरक्षा को समझाने के लिए किया गया था। फिर मतों की गणना की गई और परिणाम घोषित किए गए। विजयी उम्मीद्वारों को सभी ने बधाई दी और इस तरह चुनाव

संपन्न हुआ।

इसी तरह हमारे अध्यापक ने झूठ-मूठ की लोकसभा का भी गठन किया जिसमें कक्षा के विद्यार्थियों को सांसद बनाया गया और दो पक्ष बनाए गए। एक पक्ष सरकार का जिसमें विद्यार्थियों को अलग-अलग मंत्री पद सौंपे गए व दूसरा था विपक्ष। एक लोकसभा अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया।

हमें एक विषय दिया गया जिस पर सभी सदस्यों ने बहस की। इस तरह से विभिन्न कार्यकलापों द्वारा सामाजिक अध्ययन की तैयारी हुई। रोज़ शाम को तीनों विषयों से संबंधित प्रश्नों पर सामूहिक चर्चा से हर विषय की अच्छी तैयारी हो रही थी। ये तरीका हम सभी विद्यार्थियों के लिए नया था मगर सभी को बहुत पसंद आया। सामाजिक अध्ययन जैसा बोर विषय अब रोचक व मनोरंजक लगने लगा था। साथ में सभी विद्यार्थियों की परीक्षा की अच्छी तैयारी हो गई थी, व परीक्षा से संबंधित परेशानियां दूर हो गई थी।

हमारे अध्यापक द्वारा अपनाई गई अध्यापन की शैली सचमुच अलग थी, जो छात्रों को अधिक भाती थी। अगर सभी विद्यालयों में अध्यापन की ऐसी ही शैली अपनाई जाए तो विद्यार्थी सामाजिक अध्ययन जैसे विषय को भी उत्साह से पढ़ेंगे। अध्यापन का प्रयोगात्मक तरीका शायद ज़्यादा सार्थक व कारगर साबित होगा।

**नीलम भोंडे:** नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद में बी. एस सी. (कम्प्यूटर्स) की पढ़ाई कर रही हैं।

## ज़रा सिर खुजलाईए

**इस बार का सवाल:**

अंग्रेज़ी के अक्षर E की तरह दिखने वाले इस आकृति को एक कागज़ पर उतारकर किनारों से काट लीजिए। अब इसे 4 सीधे कट लगाकर 7 ऐसे टुकड़े करें कि उन सबको जोड़कर आप एक वर्ग बना सकें। आपने किस तरह के टुकड़े काटे? अपने जवाब हमें लिख भेजिए।

## ज़रा सिर खुजलाइए

पिछले अंक में आपसे सवाल पूछा गया था कि दस-दस सिक्कों की दस ढेरियां हैं। पहली ढेरी में सभी सिक्के एक-एक ग्राम के हैं, दूसरी में दो-दो ग्राम के ........ इस तरह दसवीं ढेरी में सभी सिक्के दस-दस ग्राम के हैं। इनमें से एक ढेरी के सभी सिक्के नकली हैं और उन सब का वज़न जितना होना चाहिए उससे 0.1 ग्राम कम या ज़्यादा है। आपके पास एक तराजू है जिसकी मदद से आपको कम-से-कम बार तौलते हुए नकली सिक्कों वाली ढेरी का पता लगाना था।

इस सवाल के लिए काफी जवाब मिले। कुछ लोगों ने पांच बार, कुछ ने तीन बार तौलकर नकली ढेरी का पता लगाया। लेकिन डॉ. प्रदीप दीक्षित, होशंगाबाद, ने तो एक बार तौलकर ही नकली ढेरी का पता लगा लिया। देखते हैं यह तरीका क्या है:

सबसे पहले सिक्कों की दसों ढेरियों को बढ़ते क्रम में एक से दस तक क्रम दे दिए। यानी एक ग्राम के सिक्कों की ढेरी को एक नंबर ....... तो दस ग्राम के सिक्कों की ढेरी को दस नंबर।

अब पहली ढेरी से एक सिक्का, दूसरी से दो सिक्के, तीसरी से तीन सिक्के....... इस तरह बढ़ते हुए दसवीं ढेरी से दस सिक्के उठा लेते हैं।

| ढेरी नंबर: | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सिक्के लिए | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
| सिक्कों का वज़न (ग्राम में) | 1 | 4 | 9 | 16 | 25 | 36 | 49 | 64 | 81 | 100 |

निकाले गए कुल 55 सिक्कों का वज़न 385 ग्राम होना चाहिए।

अब इन 55 सिक्कों को तराजू में रखकर तौलते हैं। मान लीजिए इन सिक्कों का वज़न 385 ग्राम से 0.1 ग्राम कम या ज़्यादा आए तो पहली ढेरी के सिक्के नकली हैं, यदि वज़न में 0.2 ग्राम की घट-बढ़ होती है तो दूसरी ढेरी के सिक्के नकली हैं, 0.3 ग्राम की घट-बढ़ होने पर ढेरी नंबर तीन के सिक्के नकली हैं ......... इस तरह यदि वज़न में 1.0 ग्राम की घट-बढ़ हो तो दसवीं ढेरी में सिक्के नकली हैं।

है न आसान हल! लगभग ऐसा ही हल कैलाश अग्रवाल, शुजालपुर, ने भी भेजा लेकिन वजन संबंधी थोड़ी त्रुटि के साथ।

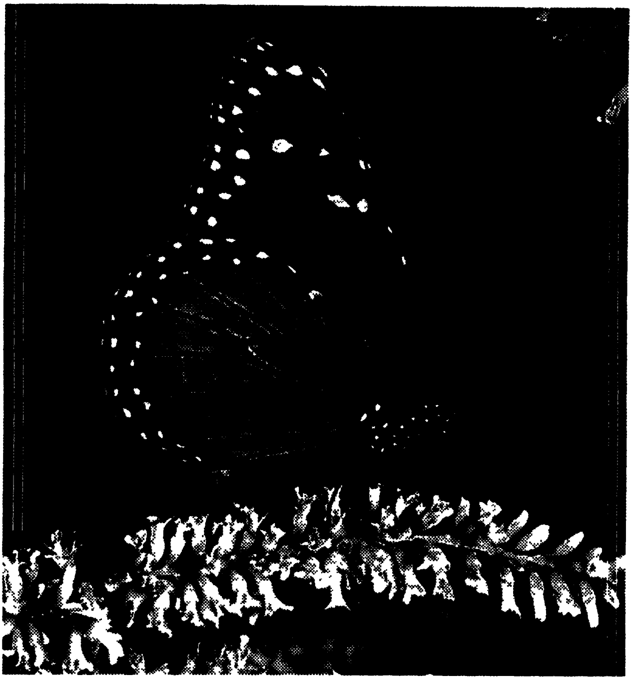

# तितलियों में रंग मज़ेदार

**मूल लेख – सुशील जोशी**

**संपादन व विस्तार – प्रियदर्शनी कर्वे**

रंगों के आधार पर तितलियों को दो समूहों में बांटा जा सकता है। एक समूह की तितलियों के रंग ऐसे होते हैं जो किसी रंगीन पदार्थ से बने होते हैं। इन रंगीन पदार्थों को रंजक या पिगमेंट कहते हैं। लेकिन काफी सारी तितलियां रंजकों के बगैर भी रंगीन होती हैं। यानी किसी तितली के पंखों का रंग तो पीला दिखता है लेकिन पंखों पर कोई पीला रंजक नहीं होता। है न अचम्भे वाली बात! इस मुद्दे पर हम थोड़ी देर बाद आते हैं।

पहले 'सचमुच' के रंगों के बारे में चर्चा कर लेते हैं। उसके बाद बिना रंजकों के दिखने वाले रंगों की बात करेंगे।

यह तो हम भलीभांति जानते हैं कि सूरज की रोशनी में कई रंगों की किरणें होती हैं। यदि इनमें से कुछ रंगों की किरणों को कम किया जाए तो जो रंग दिखेगा वो बची हुई रंगीन किरणों का मिला-जुला परिणाम होगा। जैसे मान लो कोई वस्तु लाल रंग की है। उस पर सूरज की रोशनी पड़ती है व उस वस्तु से टकराकर परावर्तित होकर हमारी आंखों तक आती है। और वह वस्तु हमें लाल दिखती है क्योंकि उस वस्तु ने लाल रंग की किरणों को छोड़कर शेष सभी रंगों की किरणों को शोषित कर लिया है। यदि सूरज की रोशनी में मौजूद रंगों को आप देखना चाहते हों तो बॉक्स में दिए प्रयोग को ज़रूर करके देखिए।

## कुदरत में बिखरे हैं रंजक

इस कुदरत में ऐसे अनेक रंजक पदार्थ हैं जो अपनी खास रासायनिक संरचना (बनावट) की वजह से किसी खास रंग की किरणों को बजाए सोखने के परावर्तित या संचारित (ट्रांसमिट) करते हैं। हमारे आसपास ऐसे रंजक पदार्थों की कोई कमी नहीं है। जैसे 'क्लोरोफिल' की वजह से पेड़-पौधों की पत्तियां हरी दिखती हैं, तो गाजर का रंग कैरोटिन की वजह से खास लाली लिए होता है। इसी तरह इंसानों में भी त्वचा का रंग मेलेनिन रंजक की मात्रा कम-ज़्यादा होने की वजह से अलग-अलग होता है। तितलियों के शरीर में भी कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ होते हैं जो सफेद रोशनी में से कुछ रंगों को सोख लेते हैं और हमें तितली न सोखे गए रंगों/रंग के कारण दिखाई देती है। ऐसे कई सारे पदार्थ

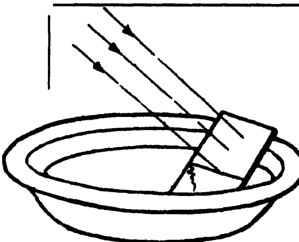

### धूप से रंग

एक थालीनुमा बर्तन को पानी से भर लीजिए। अब बर्तन को किसी ऐसी जगह रखिए जहां सूरज की रोशनी इस तक पहुंच रही हो। चित्र में दिखाए अनुसार बर्तन के किनारे से टिकाकर एक आईना रखिए। आईने का चमकदार हिस्सा ऊपर की ओर व सूरज की तरफ होना चाहिए। अब आईने को इस तरह सेट करना है कि सूरज का प्रतिबिम्ब पास की किसी दीवार पर बने
यदि यहां तक सफलता पूर्वक पहुंच गए हों तो अब दीवार पर बनने वाले रंगों को ध्यान से देखिए। रंगों के इस समूह को वर्णक्रम कहा जाता है।

तितली के शरीर में होते हैं जिनमें – मिलेनीन, कैरोटिनाइड, टेरीन, ओमोक्रोम टेट्रापायरो, क्विलोन, फ्लेवोन समूह के पदार्थ प्रमुख होते हैं। हरेक पदार्थ किन्हीं खास रंगों की किरणों को सोख लेता है। पंखों पर एक ही जगह पर एक से ज़्यादा रंजक पदार्थ होने की स्थिति में हमें रंगों में इनका मिला-जुला असर दिखाई देता है।

ये रंजक पदार्थ आते कहां से हैं? एक सीधा-सा जवाब हो सकता है कि शायद ये रंजक तितलियों के शरीर में ही निर्मित होते होंगे। लेकिन कुछ रंजक ऐसे भी होते हैं जो तितलियों को उनके भोजन के मार्फत मिलते हैं। यानी यदि ऐसी तितलियों के खान-पान को बदल दिया जाए तो तितलियों के रंग में भी बदलाव देखा जा सकता है।

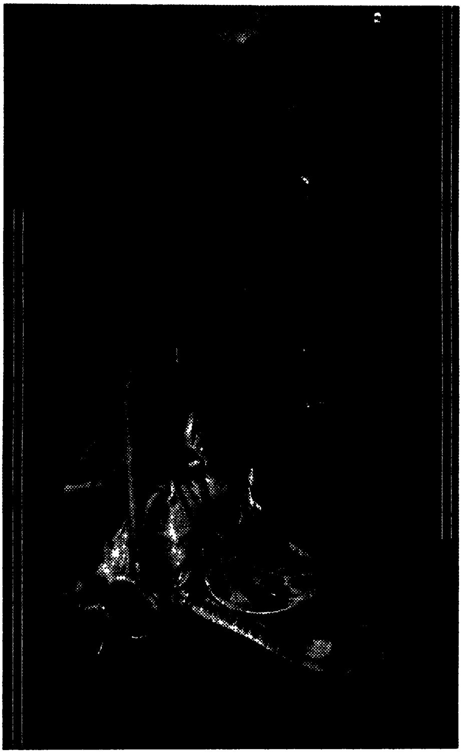

**शंखी से तितली:** शंखी से बाहर निकलती हुई तितली। इस वक्त तितली के रंग काफी चटख होते हैं जो बाद में हवा के संपर्क की वजह से फीके पड़ते जाते हैं।

अभी थोड़ी देर पहले जिन रंजक समूहों की चर्चा की गई है उनकी अलग-अलग मात्राएं लेकर यदि मिश्रण बनाए जाएं तो तितलियों में पाए जाने वाले लगभग सारे रंग बनाए जा सकते हैं। ऐसे कई सारे रंग तितलियों के शरीर से बनाए भी गए हैं।

कुछ तितलियों के बारे में एक और तथ्य सामने आया है कि जब शंखी में से तितली बाहर आती है तब उसके रंग काफी चटख होते हैं लेकिन कुछ समय हवा के संपर्क में आने के बाद

चटख रंग फीके पड़ने लगते हैं। इसका मतलब यह कि ये रंजक पदार्थ तितली के शरीर में एक ही बार तैयार होते हैं, और फिर हवा में मौजूद ऑक्सीजन से क्रिया की वजह से ये रंग फीके पड़ने लगते हैं।

एक और रोचक बात यह है कि इन फीके रंगों वाली तितली को क्लोरीन के सम्पर्क में रखा जाए तो फीके रंग दोबारा चटख रंगों में तब्दील हो जाते हैं। है न हैरानी वाली बात, क्लोरीन जो रंगों को उड़ाने (ब्लीचिंग) का काम करती है, वो यहां रंगों को चमका रही है।

कीट विशेषज्ञ बताते हैं कि ये रंजक कई बार बनते तो तितलियों के शरीर में ही हैं, लेकिन ये पदार्थ उत्सर्जन के लिए शरीर से बाहर निकाले गए होते हैं। ठीक वैसे ही जैसे हमारे शरीर से पसीना, मल-मूत्र जैसे उत्सर्जित पदार्थ। कुछ तितलियां इन उत्सर्जित पदार्थों को बजाए बाहर फेंकने के उन्हें शरीर में (पंखों पर) इकट्ठा करके रखती हैं। इस तरह के उत्सर्जन को नाम दिया गया है – संग्रह उत्सर्जन। ऐसे उत्सर्जित किए जाने वाले पदार्थ शरीर के लिए हानिकारक होते हैं इसलिए तितलियां उनमें थोड़ा परिवर्तन करके उन्हें अपने शरीर की कुछ पेशियों में एकत्रित करके रखती हैं। कई सारी तितलियों में उम्र के साथ-साथ ऐसे रंग भी गाढ़े होते जाते हैं।

रंजक होंगे तो रंग दिखेगा ही, इस बात को समझना आसान है इसलिए इस बारे में सिर खुजलाने और परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। हां, थोड़ा टेढ़ा सवाल यह है कि ये रंजक पंखों पर एक खास किस्म का पैर्टन बनाते हुए ही किस तरह जमा होते हैं? इस सवाल को फिलहाल यहीं छोड़कर रंगों के बारे में कुछ और रोचक जानकारियों की ओर बढ़ते हैं।

## बिना रंजकों के रंग

साबुन के पानी से बुलबुले तो हमने -आपने खूब उड़ाए हैं। इन बुलबुलों पर भी काफी सारे रंग दिखते हैं जबकि साबुन के पानी में हमने कोई रंग वगैरह नहीं मिलाया था। इसी तरह किसी पानी भरे गड्ढे में केरोसीन या पेट्रोल गिरकर फैल जाए तो पानी की सतह पर किस्म-किस्म के रंग दिखाई देते हैं। यहां भी हमने किसी रंजक को नहीं मिलाया था। बिना रंजकों के भी रंगों का एक और उदाहरण है नीला आसमान। हमने भला कब हवा में नीली स्याही मिलाई? इसी तरह सुबह-शाम का सूरज लालिमा लिए होता है तो दोपहर को उसका रंग सफेद-पीला दिखता है। इन्द्रधनुष में तो सातों रंग साथ-साथ दिखते हैं। सुबह-शाम क्षैतिज पर बादलों का रंग देखिए उनके भी रंग बदलते रहते हैं।

ऊपर गिनाए उदाहरणों में रंग

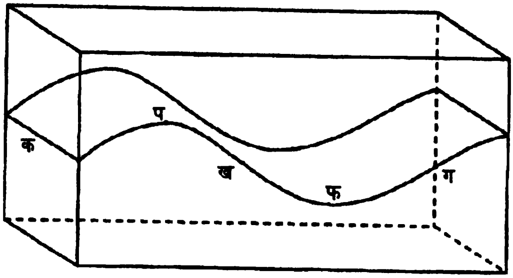


चित्र:1

'क', 'ख', 'ग' तीन पानी की स्थिर सतह के बिन्दु हैं। इनका विस्थापन, यानी इस सामान्य सतह से दूरी शून्य है। लहरें चलने की स्थिति में सतह पर स्थित पानी के कुछ कण वहीं बने रहते हैं ( क, ख, ग ), कुछ ऊपर चले जाते हैं ( प ) और कुछ नीचे की ओर चले जाते हैं ( फ )। इसी वजह से हमें पानी की सतह पर लहर या तरंग दिखाई देती है। कोई भी कण आगे पीछे नहीं जाता परन्तु हमें ऐसा अहसास होता है कि लहरें आगे की ओर जा रही हैं।

रंजकों से बने हुए नहीं थे। इन्हें हम भौतिक रंग या भौतिक रचना के रंग कहते हैं यानी कि किसी वस्तु की बनावट की वजह से दिखते हैं ये रंग। रंजकों में तो उनकी रासायनिक बनावट की वजह से वे किन्हीं खास रंग की किरणों को सोख पाते हैं व परावर्तित किरणों की वजह से हमें रंग नज़र आते हैं। लेकिन जब रंजक न हो और फिर भी रंग दिखे तो वे रंग पदार्थ की भौतिक बनावट के कारण दिख रहे होते हैं।

## तरंगों के गुणधर्म

भौतिक बनावट के रंगों को समझने के लिए प्रकाश और रंगों के बारे में कुछ मोटी-मोटी बातें समझ लेना बेहतर रहेगा। वास्तव में प्रकाश तरंगों के रूप में होता है। तरंगें यानी लहरें – समय और स्थान के अनुरूप बदलने वाली चीज़। लहर जो समय के साथ या स्थान परिवर्तन के साथ कम या ज़्यादा हो सकती है जैसा कि पानी की तरंगों के साथ होता है, इसे आप भी देख सकते हैं। एक बाल्टी में पानी लीजिए। जब पानी की सतह स्थिर हो जाए तो पानी में एक छोटा-सा पत्थर डालिए। जहां पत्थर डाला वहां तरंगें उठने लगीं न? इन लहरों में पानी के कण ऊपर-नीचे होते हैं। यदि हम पानी की स्थिर सतह को प्रारंभिक बिन्दु मान लें तो पानी का प्रत्येक कण (अणु) इस शुरुआती बिन्दु से ऊपर या नीचे कुछ दूर तक जाकर वापस स्थिर सतह पर लौटता है।

चित्र-1 में 'क', 'ख', 'ग' तीन स्थिर सतह के बिन्दु हैं यानी इस समय पानी के कण सामान्य सतह पर हैं।

## तरंग की स्थिति (Phase)

दिए गए चित्र में तरंग पर 'अ' और 'ब' बिंदुओं को देखिए। ये दोनों बिन्दु तरंग में 'एक स्थिति' में हैं या एक जैसे (In Phase) हैं। इसके विपरीत बिन्दु 'अ' और 'क' 'विपरीत स्थिति' में (Out Of Phase) हैं ऐसा कहा जाता है। अब 'प' बिन्दु पर गौर फरमाइए। इसकी स्थिति 'अ', 'ब', 'क' तीनों से फर्क है, परन्तु 'प' और 'फ' बिन्दु 'एक जैसी स्थिति' में हैं।

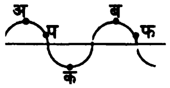


इस चित्र से आप एक बात बखूबी समझ सकेंगे कि जब तरंग पर मौजूद दो बिन्दुओं में एक पूरी तरंग लंबाई का अंतर हो तब वे बिन्दु 'एक जैसी स्थिति' में हैं ऐसा कहा जाएगा। जब दो बिन्दुओं के बीच का अंतर आधी तरंग लम्बाई का हो तो इन बिन्दुओं के बारे में कहा जाता है कि ये 'विपरीत स्थिति' में हैं जैसे कि 'ब' और 'क'। इस तरीके को अपनाते हुए एक ही तरंग लम्बाई की दो तरंगों के तरंग बिन्दुओं की तुलना की जा सकती है।

और इनका विस्थापन, यानी इस सामान्य सतह से दूरी शून्य है। लहरें चलने की स्थिति में सतह पर स्थित पानी के कुछ कण वहीं बने रहते हैं (क, ख, ग), कुछ ऊपर चले जाते हैं (प) और कुछ नीचे की ओर चले जाते हैं (फ)। इसी वजह से हमें पानी की सतह पर लहर या तरंग दिखाई देती है। कोई भी कण आगे पीछे नहीं जाता परन्तु चूंकि समय के साथ-साथ उनका ऊपर-नीचे का विस्थापन बदलता रहता है इसलिए हमें ऐसा अहसास होता है कि लहरें आगे की ओर जा रही हैं।

चित्र-1 में दिखाए गए 'क' से 'ग' तक के हिस्से को एक तरंग कहते हैं। 'क' और 'ग' बिन्दुओं के बीच के अंतर को तरंग लम्बाई (Wave Length) कहते हैं व एक सेकेंड में जितनी तरंगें बनती हैं उन्हें तरंग दैर्ध्य (Wave Frequency) कहते हैं।

प्रकाश भी एक तंरग है, लेकिन इसमें ऊपर-नीचे क्या होता होगा? प्रकाश में कुछ भी ऊपर-नीचे नहीं हो रहा होता, सिर्फ कम-ज़्यादा होता है। और वह है विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र यानी विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र शून्य से

ज़्यादा होता है, दोबारा शून्य पर आता है, फिर विपरीत दिशा में सर्वाधिक विस्थापित होकर वापस शून्य पर आता है। इसे एक तरंग या लहर कहते हैं। दृश्य प्रकाश में अलग-अलग तरंग लम्बाई की किरणें हमारी आंखों को रंगों के रूप में दिखती हैं। लाल किरणों की तरंग लम्बाई सबसे ज़्यादा होती है तो बैंगनी किरणों की तरंग लम्बाई सबसे कम होती है।

अब देखें रंगों और तरंगों का खेल। तरंगों के खेल से नज़र आने में कई प्रक्रियाओं का हाथ होता है – जैसे प्रकाश का स्कैटरिंग यानी बिखराव, इंटरफेरेंस (व्यतिकरण) और डिफ्रेक्शन (विवर्तन)। तितलियों के भौतिक रंगों का भी इन्हीं सब से लेना देना है।

शुरुआत डिफ्रेक्शन यानी विवर्तन से करते हैं। प्रकाश तरंगें हमेशा सीधी रेखा में चलती हैं यह हम भली-भांति जानते हैं लेकिन यदि रास्ते में कोई बाधा आए तो प्रकाश अपना रास्ता बदलता है। इसे प्रकाश का विवर्तन कहते हैं।

विवर्तन (डिफ्रेक्शन) क्या होता है यह देखने के लिए एक सीधा सहज प्रयोग करके देख सकते हैं। आप अपने एक हाथ की दो पास-पास की अंगुलियों को सटाने की कोशिश कीजिए। आप देखेंगे कि अंगुलियां सटाने के बावजूद एक पतली झिर्री बनी रहती है। इस झिर्री में से किसी जलते हुए ट्यूब लाइट या बल्ब को देखिए। ध्यान से देखने पर झिर्री में से दिखाई देने वाली ट्यूब लाइट पर महीन काली रेखाएं दिखाई देती हैं। यदि अंगुलियों के बीच की झिर्री को और भी कम करें तो ये काली रेखाएं भी अपना स्थान बदलती हैं। प्रकाश के विवर्तन की वजह से ही हो रहा है ऐसा।

## एक प्रयोग: टेबल लैम्प से

प्रकाश के विवर्तन को समझने के लिए एक और प्रयोग किया जा सकता है। इसके लिए एक टेबल लैम्प चाहिए। टेबल लैम्प के मुंह पर काला, अपारदर्शक कागज़ चिपकाइए। अब इस काले कागज़ में ऑलपिन से छेद कीजिए। कमरे में अंधेरा करके लैम्प चालू कीजिए। अंधेरे कमरे में ऑलपिन से किए छेद से रोशनी बाहर आ रही है। टेबल लैम्प को दीवार के पास ले जाकर दीवार पर पड़ रही रोशनी को ध्यान से देखिए। दीवार पर दिखाई दे रहा प्रकाश बिन्दु, काले कागज़ पर बनाए छेद से काफी बड़ा है। साथ ही इस बिन्दु के बाहर की ओर एक कम प्रकाशित रिंगनुमा पट्टा भी दिखता है। यह सब प्रकाश के विर्वतन का परिणाम है। (चित्र अगले पृष्ठ पर)

दीवार पर मौजूद कोई बिन्दु प्रकाशित दिखेगा या काला, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वहां पर

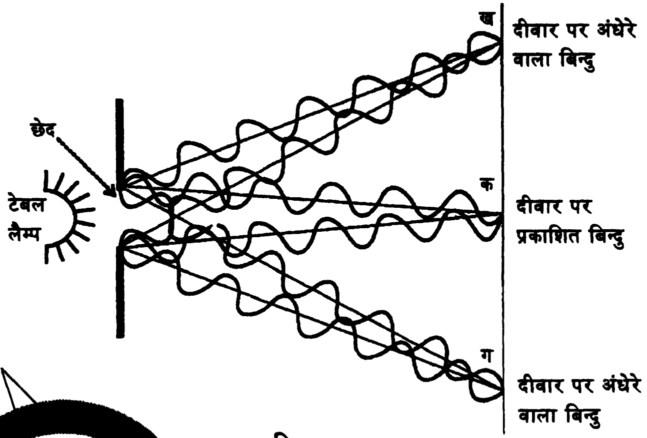


चित्रः 2

**दीवार पर प्रकाश का पैटर्नः** समझने में आसानी हो इसलिए यहां सिर्फ छेद के किनारे से निकलने वाली तरंगों को दिखाया गया है। दरअसल छेद में से जो खूब सारी तरंगें निकलती हैं उनके मिले-जुले प्रभाव से तय होता है कि दीवार पर कहां प्रकाश होगा और कहां अंधेरा।

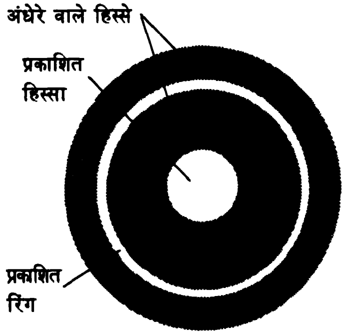


दीवार पर दिखाई देने वाली स्थितियां कुछ इस तरह से होंगी।

छेद के विभिन्न हिस्सों से आने वाली प्रकाश तरंगो का मिला-जुला परिणाम क्या होगा। जब दो प्रकाश तरंगें एक ही समय एक ही बिन्दु पर पहुंचती हैं तो वह बिंदु प्रकाशित होगा या नहीं या कितना प्रकाशित होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि दोनों तरंगों की फेज़ एक जैसी है या एक दूसरे से विपरीत। आगे की चर्चा व चित्र-2 देखने से यह बात और स्पष्ट होगी।

यदि दीवार के किसी बिन्दु पर आने वाली दोनों प्रकाश तरंगें एक जैसी हुई तो वह बिंदु प्रकाशित रहेगा जैसे कि बिंदु 'क' पर हो रहा है; अगर वे एक दूसरे से विपरीत हों तो

बिंदु काला दिखेगा यानी वहां पर अंधेरा रहेगा (बिंदु 'ख' व 'ग')। इन दोनों स्थितियों के बीच प्रकाशित हिस्से से अंधेरे वाले हिस्से की ओर प्रकाश तीव्रता में क्रमशः कमी आती हुई

चित्रः 3

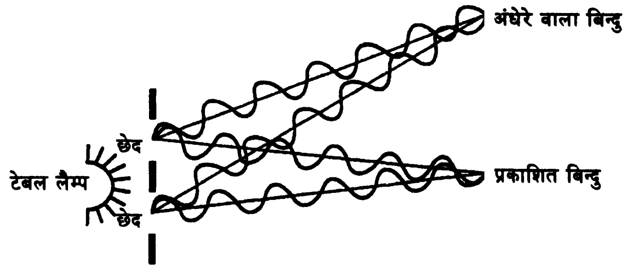


**प्रकाश का विवर्तन व व्यतिकरणः** सरल स्तर पर समझने के लिए यहां हरेक छेद में से केवल दो-दो प्रकाश की तरंगों को दिखाया गया है जिससे प्रकाशित या अंधेरे वाले हिस्से बन रहे हैं। वास्तविकता में दोनों छेदों से आने वाली बहुत-सी प्रकाश तरंगों के मिले-जुले प्रभाव से दीवार पर पैटर्न बनेगा।

दिखती है; और अंधेरे हिस्से से प्रकाशित हिस्से की ओर प्रकाश की तीव्रता क्रमशः बढ़ती हुई दिखती है।

इस प्रयोग को थोड़ा ध्यान देकर करेंगे तो जल्द ही यह समझ में आएगा कि दीवार पर मौजूद कोई बिन्दु प्रकाशित होगा या अंधेरेवाला। वैसे यह इन बातों से भी तय होता है:

1. छेद का आकार (Size) और
2. दीवार पर मौजूद बिन्दु का छेद से बनने वाला कोण।

इस प्रक्रिया में तरंगों की लम्बाई भी एक महत्वपूर्ण घटक है। बारीक छेद में से गुज़रने पर टेबल लैम्प के प्रकाश में मौजूद विभिन्न रंग। यानी विभिन्न तरंग लंबाई की किरणें अलग-अलग मात्रा में मुड़ेंगी। इसलिए दीवार पर किसी विशेष बिंदु पर किस–किस रंग की किरणें पहुंच रहीं हैं उससे तय होगा कि वहां कौन-सा रंग दिखेगा।

अब यदि हम टेबल लैम्प पर चिपकाए गए काले कागज़ पर एक के बजाए एक और छेद करें तो क्या होगा? अब दीवार पर का कोई भी बिन्दु अंधेरे में होगा या प्रकाशित हिस्से में होगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि इन दो छेदों से आ रही प्रकाश तरंगों का मिला-जुला प्रभाव क्या हो रहा है।

इन दोनों प्रयोग में दीवार पर जो पैटर्न दिखेगा वह दो घटनाओं की वजह से होगा। एक कि कागज़ में बने बारीक छेद की वजह से प्रकाश किरणें मुड़ रही हैं और अलग-अलग तरंग

# असल रंग कौन-सा है

जिस तरह कोई चीज़ किस रंग की दिखाई देगी वह इस बात से तय होता है कि वह वस्तु रोशनी की किन रंगों की किरणों को शोषित करेगी; उसी तरह वस्तु के रंग का निर्धारण इस बात से भी तय होता है कि वस्तु पर किस तरह का प्रकाश पड़ रहा है।

इन दिनों मझौले और बड़े शहरों मं काफी बड़ी तादाद में मरक्यूरी की वाष्प वाले बल्ब इस्तेमाल किए जाते हैं। शायद हम में से काफी सारे लोगों का यह अवलोकन भी रहा है कि इन बल्बों की रोशनी में देखने पर वस्तुएं वैसी नहीं दिखती जैसी साधारण सूर्य प्रकाश में दिखाई देती हैं। इसका मुख्य कारण तो यह है कि पारे की भाप वाले बल्ब से बाहर निकलने वाली रोशनी में विविध रंगों की किरणों का अनुपात सूरज की रोशनी में मौजूद अनुपात से थोड़ा फर्क होता है। इसलिए किसी एक ही वस्तु से टकराकर सूर्य के प्रकाश और इस रोशनी का सोखा गया हिस्सा और शेष हिस्सा जो हमारी आंखों तक आता है उनमें साफ फर्क दिखाई देता है।

उदाहरण के लिए, पारे की भाप वाले बल्ब में लाल रंग की किरणें होती ही नहीं हैं। ऐसे में सूरज की रोशनी में दिखाई देने वाली लाल मिर्च पारे की भाप वाले बल्ब की रोशनी में काली दिखाई देगी।

एक और मज़ेदार बात यह है कि किसी चीज़ का कोई खास रंग होना और किसी बल्ब से आने वाली रोशनी का किसी खास रंग का होना इसमें दो तरह की प्रक्रियाएं हो रही होती हैं। पकी मिर्च का रंग लाल होने का क्या मतलब है? यही न कि सूरज की रोशनी में मौजूद सभी किरणों में से मिर्च लाल किरणों को छोड़कर बाकी सभी किरणों को सोख लेती है और सिर्फ लाल रंग को परावर्तित करती है। इस प्रक्रिया में मिर्च पर पड़ने वाली सफेद रोशनी में से कुछ रंग की किरणों को निकाल लिया गया है ज़िससे मिर्च का खास रंग दिख पा रहा है। इसे 'कलर बाय सबट्रेक्शन' कहते हैं। लेकिन बल्ब में से बाहर निकलने वाली रोशनी जो पीली दिखती है वो अलग-अलग रंगों की किरणों के कुल योग का असर होता है। इसे कुल योग के रंग या 'कलर बाय एडीशन' कहते हैं।

इन मूलभूत गुणों को दो रंगों के रंजकों के मिश्रण का रंग और दो उन्हीं रंगों की प्रकाश किरणों के मिश्रण के रंग में साफतौर से देखा जा सकता है। नीले और पीले रंग को मिलाया जाए तो हरा रंग तैयार हो जाता है लेकिन नीली और हरी रोशनी को मिलाया जाए तो सिर्फ सफेद रंग ही सामने आता है।

लंबाई की किरणें अलग-अलग मात्रा में मुड़ रहीं हैं। जैसा कि हमने पहले देखा इस प्रभाव को विवर्तन या डिफ्रेक्शन कहते हैं। और दूसरा कि दीवार पर विभिन्न बिंदुओं पर कई किरणें पहुंच रही हैं जिनके मिले-जुले प्रभाव के कारण हमें वहां पर पैटर्न दिखाई देता है। इस घटना को व्यतिकरण (Interference) कहते हैं।

प्रकाश के विवर्तन की तरह ही प्रकाश का व्यतिकरण भी प्रकाश तरंगों की लम्बाई और छेद के आकार पर निर्भर होता है। साथ-साथ दीवार पर मौजूद बिन्दु ने दो छेदों के मध्य बिन्दु से कितने अंश का कोण बनाया है, और दोनों छेदों के बीच का फासला कितना है ये सब भी महत्वपूर्ण कारक हैं जिनका असर व्यतिकरण पैटर्न पर पड़ता है।

यदि इस प्रयोग में लगभग प्रकाश तरंगों की लम्बाई के साइज़ के छेद बनाए जाएं तो विवर्तन व व्यतिकरण की वजह से हमें दीवार पर विविध रंग दिखाई देंगे।

इसी प्रयोग की अगली कड़ी में हम एक-दो छेदों की बजाए एक ऐसी जाली का इस्तेमाल करें जिसमें पास-पास काफी सारे छेद बने हों। अब हरेक छेद की वजह से होने वाले विवर्तन और इन सब छेदों से आने वाली प्रकाश तरंगों के व्यतिकरण का सम्मिलित परिणाम दीवार पर दिखेगा। यदि हम जाली को या छेदों को विभिन्न कोण से देखें या कोण बदलते हुए देखें तो हमें अलग-अलग रंग दिखाई देंगे।

जिस तरह पारदर्शक जाली के कारण मन को लुभाने वाले रंगों के पैटर्न बनते हैं उसी तरह किसी परावर्तक सतह पर काफी सारे गड्ढे हों (जैसे जाली में छेद थे) तो परावर्तक सतह से प्रकाश तरंगों के टकराने के बाद भी इसी तरह रंगों के पैटर्न उभरते

### रंगों का क्या काम है?

**इस लेख को पढ़ते समय आप यह ज़रूर सोच रहे होंगे कि मान लो तितली इतनी रंगीन नहीं भी होती तो क्या बिगड़ जाता। आखिर इन रंगों का फायदा क्या है? केवल अनुमान लगाया जा सकता है कि तितली के पंखों पर मौजूद विविध पैटर्न शायद अलग-अलग काम करते होंगे; जैसे हो सकता है कि कुछ तितलियों में ये दुश्मनों से बचाव के काम आते हों, कुछ में ये पैटर्न मादा को आकर्षित करते हों, तो कुछ में बिना किसी वजह के ही हों।**

हैं। यह बात तो तय है कि पैटर्न कैसे दिखेंगे यह जाली या परावर्तन सतह पर छेदों/गड्ढों की जमावट से तय होगा।

## साबुन के बुलबुले के रंग

किसी पानी भरे गड्ढे में पेट्रोल बिखरा हो या साबुन के पानी से बने बुलबुलों में विविध रंगों के पैटर्न दिखाई देते हैं। पेट्रोल या बुलबुले की बेहद पतली सतह पर जब प्रकाश टकराता है तो उसका कुछ हिस्सा तो पतली सतह से टकराकर परावर्तित हो जाता है। कुछ हिस्सा परावर्तित न होकर सतह में घुस जाता है, और सतह के निचले हिस्से से अंशतः परावर्तित होता है। इस तरह परावर्तित हुआ प्रकाश फिर से ऊपरी सतह तक आता है। ऊपरी सतह तक आये प्रकाश का कुछ हिस्सा तो सतह को पार कर आगे चला जाता है लेकिन कुछ हिस्सा ऊपरी सतह से टकराकर पुनः नीचे की ओर परावर्तित हो जाता है। (चित्रः 4)।

## रंग एवं तरंग लम्बाई

विवर्तन (डिफ्रेक्शन) और व्यतिकरण (इंटरफेरेंस) की वजह से प्रकाश में से रंग किस तरह अलग होते हैं यदि यह देखना हो तो प्रकाश के स्रोत के सामने रखी चलनी के छेदों का साइज़ या झिल्ली की मोटाई, प्रकाश तरंगों की लंबाई से मेल खाने चाहिए। दृश्य प्रकाश में तरंगों की लंबाई साधारणतः 380 नेनोमीटर से 750 नेनोमीटर के बीच होती है। (1 नेनोमीटर यानी $10^{-9}$ मीटर) 380 नेनोमीटर वाली रोशनी बैंगनी होती है तो 750 नेनोमीटर वाली रोशनी लाल होती है।

प्रकाश के रंगों पर विवर्तन के परिणाम देखने के लिए हमें कुछ सौ नेनोमीटर व्यास के छेदों का इस्तेमाल करना पड़ता है। इतने सूक्ष्म आकार खुली आंखों से तो दूर, ऑप्टिकल माइक्रोस्कोप के नीचे भी काफी परेशानी से दिखेंगे। प्रयोगशालाओं में विवर्तन के गुणों की जांच के लिए खास किस्म की जाली को उपयोग में लाते हैं। इस जाली को विवर्तन जाली (Diffraction Grating) कहते हैं। आपके आसपास के किसी साइंस कॉलेज में ऐसी जाली देखने को मिल जाएगी। इस तरह की जाली का इस्तेमाल करके प्रकाश में से अलग-अलग रंगों को पृथक करने का प्रयोग भी देख सकेंगे।

इसी तरह अगर व्यतिकरण की घटना देखनी हो तो भी इतने ही बारीक छेद या झिल्ली की ज़रूरत होगी।

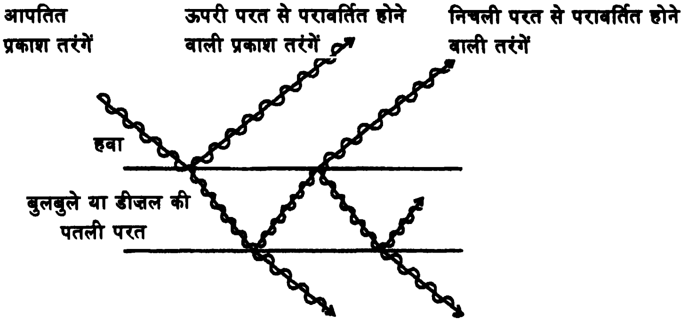

चित्र: 4

**रंगीन परत किस तरह:** साबुन का बुलबुला या सड़क के किसी पानी भरे गड्ढे में बिखरे डीज़ल की ऊपरी परत काफी रंगीन दिखाई देते हैं। इन दोनों में होता यह है कि प्रकाश का कुछ हिस्सा तो बुलबुले या डीज़ल की ऊपरी परत से टकराकर परावर्तित हो जाता है। बचा हिस्सा परावर्तित न होकर बुलबुले या डीज़ल की परत से होता हुआ भीतर चला जाता है। यहां फिर से कुछ हिस्सा तो दूसरी ओर बाहर निकल जाता है लेकिन शेष हिस्सा भीतरी परत से टकराकर परावर्तित होता हुआ हमारी आंखों तक आता है। इन दो तरह की किरणों के परिणामी प्रभाव से ही हमें दिखाई देते हैं ये अदभुत रंग।

कुल मिलाकर हमारी आंखों तक पहुंचने वाली प्रकाश किरणें दो किस्में की हैं। एक जो पेट्रोल की सतह के ऊपरी भाग से परावर्तित होकर हमारी आंखों तक आ रही हैं। दूसरी वे किरणें जो पेट्रोल की सतह के निचले भाग से टकराकर परावर्तित होकर हमारी आंखों तक आ रही हैं। ये दो किस्म की प्रकाश किरणें एक ही दिशा में चल रही हैं, एक ही जगह पहुंच रही हैं लेकिन पहली किरणों के मुकाबले दूसरी किरणें कुछ ज़्यादा सफर तय कर रही हैं। और वो भी हवा, पेट्रोल या पानी की सतह जैसे अलग-अलग अपवर्तनांक वाले माध्यमों से गुज़रते हुए।

हवा से ज़्यादा अपवर्तनांक वाले माध्यमों में घुसने पर किरणों की तरंग लम्बाई कम हो जाती है और फिर से हवा में आने पर तरंग लम्बाई पहले की तरह हो जाती है। निश्चित ही पेट्रोल की बारीक झिल्ली में से होकर आने वाली प्रकाश तरंगों की स्थिति भी फर्क होगी। और इसकी वजह से व्यतिकरण होकर रंग-बिरंगे पैटर्न दिखाई देतें हैं।

मान लीजिए इसी तरह के अलग-अलग अपवर्तनांक वाली परतें एक के

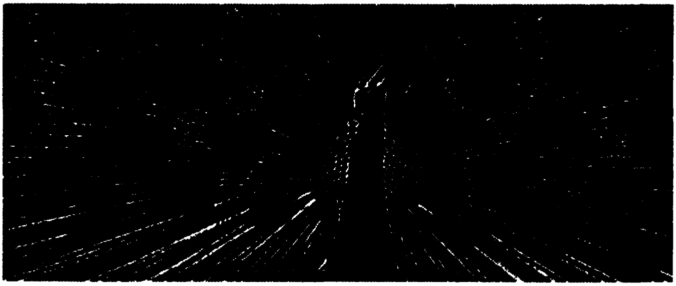

**मोरपंख के रंगः** मोरपंख की हरी–नीली छटाएं मन को मोह लेती हैं। लेकिन यदि मोरपंख को ध्यान से देखेंगे तो आपको भी लगेगा कि आपके साथ अभी तक धोखा हो रहा था। यकीन न हो तो इस लेख के आखिर में मोरपंख के साथ दिए प्रयोग को करके देख लीजिए।

नीचे एक हों तो? कुछ तितलियों के पंखों की बनावट बिल्कुल ऐसी ही होती है। कुछ तितलियों के पंखों पर बहुत महीन धारियां होती हैं जो बहुत पास-पास उभरी हुई और धंसी हुई होती हैं। इन परतों की वजह से पंख भी डिफ्रेक्शन चलनी का काम करते हैं।

पंखों पर महीन संरचना दो या तीन परतों में होती है। हरेक परत में बालों की बनावट फर्क होती है। दो परतों के बीच का फासला हवा से भरा होता है। इस किस्म की बहुस्तरीय बनावट के कारण तितलियों के पंखों से परावर्तित होने वाली रोशनी में विवर्तन और व्यतिकरण, दोनों घटनाएं देखने को मिलती हैं। ऐसी तितलियों को यदि हम कोण बदल-बदलकर देखें तो उनके पंखों के रंग बदलते हुए नज़र आते हैं।

कुछ तितलियों में रंग रासायनिक बनावट (पिगमेंट) और भौतिक रंगों का मिला-जुला प्रभाव भी हो सकता है। मान लीजिए किसी तितली के पंखों की महीन धारियों में पीला रंजक पदार्थ मौजूद है तथा महीन धारियों की बहुस्तरीय परत नीला रंग बनाने वाली है तो इन दोनों के मिले-जुले असर से तितली हरे रंग की दिखेगी।

शरीर की सतह पर मौजूद खास रचनाओं के कारण रंगीन दिखना सिर्फ तितलियों तक सीमित नहीं है। कुछ कीटों, पक्षियों, मछलियों, सांप वगैरह में भी इसी प्रकार के रंग दिखाई देते हैं। इस सब चर्चा के बीच मोरपंख की बात न हो यह ठीक नही लगता।

## मोरपंख के रंग

यदि मोरपंख को आप ध्यान से देखेंगे और पंख के छोटे-छोटे हिस्सों पर गौर करेंगे तो आपको मोरपंख के

रंगों का रहस्य समझ में आएगा। पिछले हिस्से पर रोशनी डालकर सामनें से देखने से पता चलता है कि मोरपंख वास्तव में उतना रंग-बिरंगा नहीं है। उसमें सिर्फ बैंगनी रंग ही इफरात में है। पंख के साथ होता यह है कि पंख पर सामने से पड़ने वाली रोशनी के परावर्तन, विवर्तन और व्यतिकरण के कारण यह मन को लुभाने वाली हरी-नीली छटाएं बिखेरता है।

कौन-कौन से रंग दिखेंगे और किस पैटर्न में दिखेंगे यह बात हवा की परत, तितलियों के पंखों की रचना (या मोरपंख में परतें), इनके अपवर्तनाकों में फर्क जैसी बातों पर निर्भर है। इसका एक अर्थ यह भी है कि पंखों पर जमे विभिन्न पदार्थों की परतों के बीच का खाली स्थान हवा की बजाए किसी अन्य पदार्थ के द्वारा भरा जाए तो कुछ फर्क रंग और कुछ फर्क पैटर्न नज़र आएंगे। यदि आपके पास मोर पंख हो तो उस पर पानी या पेट्रोल की कुछ बूंदें डालकर देखिए कि क्या होता है। यदि ऐसा करने पर कुछ गड़बड़ लग रहा हो तो भी डरिए मत क्योंकि पानी या पेट्रोल सूख जाने पर आपका मोरपंख पहले की तरह मनभावन दिखने लगेगा।

---

**लेखकः प्रियदर्शनी कर्वे।** सिंहगढ़ कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पुणे में पढ़ाती हैं। पुणे से प्रकाशित मराठी संदर्भ की संपादन टीम की सदस्य हैं। **सुशील जोशीः** एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र विज्ञान लेखन व अनुवाद करते हैं।

**मूल लेखः** चकमक पत्रिका के सितंबर 1998 के अंक में प्रकाशित।

**संपादित व विस्तृत्न लेखः** मराठी संदर्भ के अंक-6, जून-जुलाई, 2000 में प्रकाशित।

**अनुवाद :** माधव केलकर। संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।

**पिछले अंक में सवालीराम से पूछे गए चार सवालों में से फिलहाल दो के जवाब यहां दिए जा रहे हैं। दो सवाल अभी भी बचे हैं जिनके जवाब आप अभी भी दे सकते हैं।**

**सवालों को एक बार फिर दोहरा लें।**

1. **चंद्रमा पर वायुमंडल क्यों नहीं हैं?**
2. **ठंडे सूप की अपेक्षा गर्म सूप क्यों स्वादिष्ट लगता है?**
3. **पृथ्वी पर उत्पन्न प्रथम जीव को क्या कहा गया?**
4. **किस ग्रह में नए जीवन की खोज की गई है?**

**सवाल:** चंद्रमा पर वायुमंडल क्यों नहीं है?

**जवाब:** किसी आकाशीय पिंड पर वायुमंडल का होना या नहीं होना दो बातों पर निर्भर करता है एक – उस पिंड का पलायन वेग और दूसरे– उस पिंड की सतह का तापमान।

वायुमंडल विभिन्न प्रकार की गैसों का मिश्रण होता है। इन गैसों के कण निरंतर गति करते रहते हैं। अगर किसी कारणवश गैस का तापमान बढ़ा दिया जाए तो इन कणों की गति भी बढ़ जाती है।

हर ग्रह या उपग्रह का अपना गुरुत्वाकर्षण बल होता है, जो दूसरे पिंडों को व अपनी सतह पर मौजूद धूल, मिट्टी, गैसों आदि को अपनी ओर खींचता है। यदि कभी आपको किसी ग्रह या उपग्रह के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकलना हो तो एक विशेष गति की ज़रूरत होती है ताकि आप गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकल सकें। हमारी पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर निकलने के लिए 11.6 किलोमीटर/सेकेंड की रफ्तार चाहिए। इसलिए धरती से दूर अंतरिक्ष में छोड़े जाने वाले रॉकेट की गति 11.6 किलोमीटर/सेकेंड तक बढ़ानी पड़ती है। इस वेग को पलायन वेग कहते हैं। हरेक ग्रह या उपग्रह के गुरुत्वाकर्षण बल के अनुरूप पलायन वेग भी बदलता है। जैसे चंद्रमा पर पलायन वेग 2.4 किलोमीटर/सेकेंड है ( यानी 144 किलोमीटर प्रति मिनट। )

दूसरी बात है तापमान। चंद्रमा की प्रकाशित सतह का तापमान लगभग 130 डिग्री सेंटीग्रेड होता है।

यानी गैसों द्वारा चंद्रमा पर पलायन वेग को प्राप्त करने की संभावना कहीं ज़्यादा है। और गैसों के अणु गति करते हुए पलायन वेग को पार करके चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से बाहर

निकल जाते हैं।

यहां एक मज़ेदार तथ्य यह भी है कि हमारी धरती अपने आकर्षण बल के कारण वायुमंडलीय गैसों को थामे हुए है लेकिन यदि धरती की सतह का तापमान दो गुना कर दिया जाए तो यहां भी गैस के अणु पलायन वेग को पा लेंगे और धरती पर वायुमंडल का खात्मा हो जाएगा।

**सवाल:** ठंडे सूप की अपेक्षा गर्म सूप क्यों स्वादिष्ट लगता है?

**जवाब:** जैसा कि हम जानते ही हैं कि जीभ पर अलग-अलग स्थानों से मीठे, खट्टे, कड़वे और नमकीन स्वाद का पता चलता है। हमारी जानकारी में यह बात भी है कि भोज्य पदार्थों का स्वाद हमें हमारी जीभ पर मौजूद स्वाद कलिकाओं द्वारा पता चलता है। लेकिन जीभ पर मौजूद स्वाद कलिकाओं और भोज्य पदार्थों के बीच कौन-सी क्रिया होती है इसका कोई संतोषप्रद जवाब नहीं है। फिर भी ऐसा माना जाता है कि आहार में मौजूद विभिन्न पदार्थ लार में घुलकर अणुओं में बिखरने लगते हैं। ये अणु स्वाद कलिकाओं को उत्तेजित करते हैं जिससे विद्युत-रसायन संकेत पैदा होते हैं। इनकी जानकारी तंत्रिका तंतुओं से होती हुई दिमाग तक पहुंचती है जहां स्वाद की पहचान होती है।

अब आते हैं हम अपने मूल सवाल पर कि ठंडे सूप के मुकाबले गर्म सूप ज़्यादा स्वादिष्ट क्यों लगता है?

किसी भी खाद्य पदार्थ के पूर्ण स्वाद के लिए ज़रूरी है कि पदार्थ के स्वाद के साथ-साथ हमें उसकी गंध की जानकारी भी मिले, तभी तो ज़ायका समझ में आता है। आपने शायद ध्यान दिया हो कि जो खाने की चीज़ें कम तापमान पर होती हैं यानी अगर फ्रिज में रखीं हों तो उनमें से गंध/महक कम आती है। अगर आइसक्रीम भी बहुत ठंडी हो तो उसका विशेष स्वाद भी अच्छी तरह से पता नहीं चलता।

यही कारण है कि गर्मागर्म सूप से उठ रही महक भी हमारी नाक के ज़रिए दिमाग तक पहुंचती है और सूप अत्यन्त ज़ायकेदार लगता है। ठंडे सूप में जीभ तो अपना काम करती है लेकिन नाक के लिए कुछ भी नहीं होता!

आपने यह भी अनुभव किया होगा कि सर्दी-जुकाम के दिनों में गरम सूप भी उतना स्वादिष्ट नहीं लगता क्योंकि नाक की गंध के प्रति संवेदनशीलता कम हो जाती है; जिसकी वजह से सूप स्वादहीन लगने लगता है।

---

इन दोनों सवालों के जवाब – अरुण कुमार पाण्डेय, मुलतानपुर (उ.प्र.); अश्विन व्यास, रामटेकरी, मंदसौर; कौस्तुभ सिंह जादौन, उदयपुर (राजस्थान) ने दिए हैं।

# संदर्भ सजिल्द संस्करण

## हर जिल्द में हैं:

भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र,
प्राणी व्यवहार, सूक्ष्मजैविकी, गणित, इतिहास,
भूगोल-भूविज्ञान, वैज्ञानिकों की जीवनियां,
पढ़ाने के तरीके, बच्चों के साथ अनुभव,
प्रयोग-मॉडल एवं गतिविधियां,
सर्वे रिपोर्ट, कहानियां, पहेलियां
और
सवालीराम के सवाल-जवाब

**संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25 और 26-30 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं। इनके साथ है प्रकाशित अंकों का विषयवार इंडेक्स।**

**प्रत्येक का डाक-खर्च सहित मूल्य 65 रु.।**

**राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।**

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद, म. प्र, 461001
ई - मेल: eklavyahoshangabad@bigfoot.com

एकलव्य
ई - 1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462 016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

# 80 दिन में

# दुनिया की सैर

ज्यूल्स वर्न

लंदन के एक क्लब में फिलिस फॉग और उनके एक दोस्त के बीच शर्त लग गई थी कि फिलिस फॉग यातायात के आधुनिक साधनों का इस्तेमाल करके, 80 दिन में दुनिया का एक चक्कर पूरा करेंगे।

फिलिस फॉग अपने एक साथी पासपार्टआउट के साथ यात्रा पर निकल पड़ते हैं। यात्रा के दौरान वे भारत से भी गुज़रते हैं। बम्बई से इलाहाबाद तक का अधिकतर सफर उन्हें रेलगाड़ी से तय करना था।

पिछले अंक में आपने उनके रेल सफर का किस्सा पढ़ा जिसमें इलाहाबाद से पचास मील पहले रेलगाड़ी रुक गई थी क्योंकि आगे रेल की पांतें बिछाने का काम अभी भी बाकी था, चाहे उन्हें टिकट बेशक इलाहाबाद तक की दी गई थी! रेलगाड़ी बीच में ही रुक जाने पर फिलिस फॉग एक हाथी खरीदकर और एक महावत को साथ लेकर इलाहाबाद की ओर चल पड़ते हैं। फिर आगे क्या हुआ, इस बार पढ़िए।

अपनी मंज़िल तक जल्दी पहुंचा जा सके इसलिए गाइड ने निर्माणाधीन रेल का रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ा। विंध्याचल पहाड़ों की ऊंचाइयों से बचने के लिए रेल लाइन घूम-फिरकर आगे बढ़ती थी जबकि फिलिस फॉग के लिए ज़रूरी था कि वो सबसे छोटा रास्ता अख्तियार करे। पारसी महावत उस इलाके के चप्पे-चप्पे से वाकिफ था और उसका कहना था कि जंगल का रास्ता पकड़ने पर तकरीबन बीस मील की बचत हो जाएगी। इसलिए औरों के एतराज़ का सवाल ही नहीं था। चूंकि महावत काफी तेज़ी से हाथी को दौड़ा रहा था इसलिए हौदे में गर्दन तक धंसे हुए फिलिस फॉग और सर फ्रांसिस क्रोमेटरी को जमकर धचके लग रहे थे। परन्तु सदियों से चली आ रही ब्रिटिश परंपरा की बदौलत उन्होंने चूं तक नहीं की।

हाथी की पीठ पर बैठे पासपार्टआउट को और भी ज़्यादा झटके लग रहे थे और वह अपने मालिक की नसीहत याद करते हुए लगातार इसी कोशिश में था कि कहीं उसकी जीभ दांतों के बीच न आ जाए; क्योंकि ऐसा होने पर ज़रूर उसकी जीभ के दो टुकड़े हो जाते। हाथी की गर्दन पर उचकता हुआ पासपार्टआउट ऐसा लग रहा था मानो कि सर्कस का कोई

जोकर उछल-कूद कर रहा हो। इस सब के बावजूद वह लगातार मज़ाक कर रहा था और हंस रहा था। बीच-बीच में वो अपने थैले में से गुड़ के टुकड़े निकालता और हाथी अपनी चाल में बिना कोई बदलाव लाए सूंड से उस टुकड़े को लपक लेता।

दो घंटे के बाद गाइड ने हाथी को दो घंटे सुस्ताने दिया। हाथी ने पहले तो पास के तालाब से अपनी प्यास बुझाई और फिर जंगल के पेड़ों और झाड़ियों को खाने में जुट गया। इस पड़ाव से सर फ्रांसिस क्रोमेटेरी बहुत खुश हुए चूंकि वे बेहद थक चुके थे। दूसरी ओर मिस्टर फॉग तो एकदम तरोताज़ा लग रहे थे मानो वे अभी बिस्तर से उठे हों।

ब्रिगेडियर जनरल ने उनकी तरफ प्रशंसनीय नज़रों से ताकते हुए कहा, "यह इंसान ज़रूर लोहे का बना है।" पासपार्टआउट ने तुरंत जोड़ा, "फौलाद का।" और जल्दी से खाना बनाने में जुट गया।

ठीक दोपहर को पारसी गाइड ने चलने का इशारा किया। जल्द ही वे ऐसे इलाके में पहुंच गए जिसमें घने जंगल के बजाए इमली और खजूर के पेड़ थे और फिर उसके भी बाद छोटी-छोटी झाड़ियों से भरी पथरीली ज़मीन। बुंदेलखंड के इस ऊपरी इलाके में यात्री

सभी चित्र: वी. एम. भोंडे।

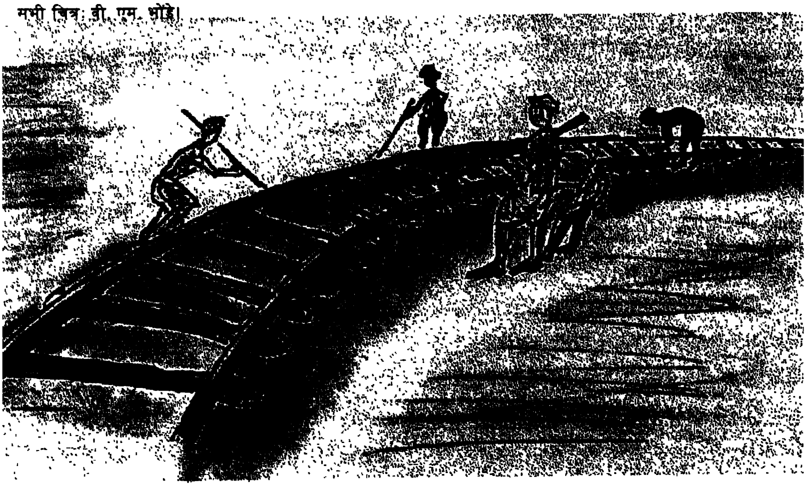

कम ही जाते हैं। इस इलाके में हिंदू धर्म की कट्टर परंपराओं को मानने वाले लोग बसे हुए हैं। अंग्रेज़ इस इलाके में अपना राज कायम नहीं कर पाए हैं। विंध्याचल पहाड़ों के इन इलाकों में ऐसे राजाओं का शासन है जिन तक पहुंचना ही मुश्किल होगा।

कई जगह इस तेज़ चौपाए को देखकर उसकी ओर इशारे करते हुए खूंखार दिखने वाले लोग नज़र आए। पारसी महावत की यही कोशिश थी कि उनसे कम-से-कम पाला पड़े तो ही अच्छा है क्योंकि वे किसी भी जोखिम में पड़ सकते हैं। रास्ते में उन्हें बहुत ही कम जानवर दिखाई दिए। कहीं-कहीं एक-दो बंदर जो मुंह बनाते-बिगाड़ते हुए भाग जाते थे। जब भी बंदर दिख जाते तो पासपार्टआउट को मज़ा आ जाता था।

पासपार्टआउट को एक बात की खास चिंता सताए जा रही थी कि मिस्टर फॉग इलाहाबाद पहुंचकर इस हाथी का क्या करेंगे। क्या वे इसे भी अपने साथ ले जाएंगे? वो तो नामुमकिन था। खरीदने की कीमत में अगर उसे साथ ले जाने का खर्च मिला दें तो दिवाला ही निकल जाएगा। इसे बेच देंगे या फिर ऐसे ही खुला छोड़ देंगे? उसे इस बात की भी चिंता थी कि इस वफादार जानवर के साथ अच्छा सलूक किया जाए। पासपार्टआउट यह भी सोच रहा था कि अगर कहीं मिस्टर फॉग उसे हाथी उपहार में दे दें तो वह क्या करेगा! इस संभावना से वह काफी चिंतित था।

विध्यांचल की मुख्य शृंखला को उन्होंने शाम के आठ बजे पार कर लिया। तत्पश्चात वे उत्तरी ढलान पर बने एक खंडहरनुमा बंगले में रुके। उस दिन उन्होंने पच्चीस मील का फासला तय कर लिया था और इलाहाबाद पहुंचने के लिए इतना ही और बचा हुआ था।

रात को काफी ठंडक थी इसलिए पारसी महावत ने सूखे पत्तों और टहनियों से आग जला ली जिससे सबको काफी राहत महसूस हुई। खोलबी से खरीदे गए सामान से रात का खाना तैयार हुआ और थके-मांदे यात्रियों ने भरपेट भोजन किया। खाने के बाद अभी बातचीत शुरू ही हुई थी कि सब लोग खर्राटे लेने लगे। गाइड 'किओनी हाथी' के पास खड़ा पहरा दे रहा था। किओनी हाथी भी जल्दी ही एक पेड़ के मोटे तने के सहारे खड़ा-खड़ा सो गया।

**

रात बिना किसी खास घटना के गुज़र गई। बीच-बीच में ज़रूर रात

का सन्नाटा चीते और तेंदुए की गुर्राहट से भंग हो जाता; और कभी-कभी बंदरों की चिचियाहट से। परन्तु गुर्राने के अलावा इन मांसाहारी जानवरों ने बंगले के रहवासियों को और किसी तरह से तंग नहीं किया। सर फ्रांसिस क्रोमेटरी एक थके-मांदे सिपाही की तरह निढाल सोए हुए थे। पासपार्टआउट को बहुत अच्छी तरह से नींद नहीं आई – उसे यही सपने आते रहे कि वो अभी भी हाथी की पीठ पर उचक रहा है। परन्तु मिस्टर फॉग तो ऐसे शांतभाव से सो रहे थे मानो कि वे इंग्लैंड में 'सेविल रॉ' स्थित अपने घर में आराम फरमा रहे हों।

सुबह छः बजे यात्रा फिर से शुरू हो गई। गाइड को भरोसा था कि शाम तक वे सब इलाहाबाद पहुंच जाएंगे; इसलिए मिस्टर फॉग के बचाए हुए पूरे अड़तालीस घंटे बरबाद नहीं होंगे।

विंध्याचल की आखिरी उतार पर किओनी हाथी ने फिर से रफ्तार पकड़ी और दोपहर तक वे गंगा की सहायक नदी कानी के किनारे बसे एक कस्बे कालिंजर आ पहुंचे। महावत ने कस्बे से कुछ दूरी बनाए रखते हुए इस रास्ते को पकड़ा।

दो बजे के करीब वे घने जंगल में घुसे जिसमें उन्हें काफी समय तक चलना था। महावत की कोशिश थी कि ज़्यादा-से-ज़्यादा रास्ता जंगल और पेड़ों की सुरक्षा में छिपकर तय हो।

अब तक तो बिना किसी दुर्घटना के वे लोग आगे बढ़ पाए थे और ऐसा लग रहा था कि वे अपनी मंज़िल तक सफलता से पहुंच जाएंगे। तभी अचानक किसी चीज़ से आशंकित होकर हाथी रुक गया।

उस समय शाम के चार बजे थे। सर फ्रांसिस क्रोमेटरी ने पूछा, "क्या बात है?" "पता नहीं", पारसी महावत ने जवाब दिया। वो घने जंगल से आ रही आवाज़ को ध्यान से सुनने की कोशिश कर रहा था। कुछ ही देर में यह धीमी आवाज़ स्पष्ट सुनाई देने लगी, ऐसी ध्वनि मानो काफी सारे लोग एक साथ बोल रहे हों और साथ ही कांसे के वाद्ययंत्रों की आवाज़।

पासपार्टआउट बहुत ही ध्यान से सुनने की कोशिश कर रहा था और साथ ही घने जंगल में आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। इस बीच फिलिस फॉग ने एक शब्द भी नहीं कहा। वो बहुत धैर्य से इंतज़ार कर रहे थे।

पारसी महावत ने नीचे कूदकर हाथी को पेड़ से बांधा और घने जंगल में गुम हो गया। कुछ देर बाद वह लौटा और बोला, "ब्राह्मणों का एक काफिला इस तरफ चला आ रहा है। हमें पूरी कोशिश करनी चाहिए कि वे

लोग हमें न देख पाएं।"

वहां से हाथी को खोलकर पारसी जंगल के घने हिस्से की ओर ले गया। उसने सबको चेता दिया कि वे नीचे नहीं उतरें और किसी भी क्षण वहां से भाग निकलने के लिए तैयार रहें। वैसे उसे इस बात का पूरा भरोसा था कि काफिला उन्हें देख नहीं पाएगा। वे जंगल के काफी घने हिस्से में छिपे हुए थे।

लोगों और वाद्ययंत्रों का शोर नज़दीक आता जा रहा था। ढोलक, नगाड़े और मंजीरे की आवाज़ के साथ लगातार हो रहे मंत्रोच्चार की ध्वनि।

पचास गज की दूरी पर जुलूस का आगे का हिस्सा नज़र आने लगा। सबसे आगे लंबे कढ़ाई किए चोंगे पहने पुजारी चल रहे थे। उनके आसपास चल रहे स्त्री-पुरुष और बच्चे झांझ और नगाड़े की तीव्र ध्वनियों के साथ करुणगीत गा रहे थे।

उनके पीछे चौड़े चकों से बने रथ पर एक वीभत्स मूर्ति रखी हुई थी। रथ के पहियों के स्पोक आपस में लिपटे-गुथे हुए सांपों को चित्रित कर रहे थे। अत्यंत सुसज्जित चार घोड़े इस रथ को खींच रहे थे। रथ पर रखी हुई मूर्ति के चार हाथ थे। शरीर स्याह लाल था, डरावनी आंखें, उलझे हुए बाल, बाहर निकली हुई लंबी जीभ और पान-मेंहदी से रंगे हुए ओंठ। गले में खोपड़ियों की माला पहने हुई थी और कमर में कटे हुए हाथों का पट्टा। यह मूर्ति एक सरकटे दैत्य के ऊपर खड़ी हुई थी।

सर फ्रांसिस ने मूर्ति को पहचानकर कहा, "यह तो काली की मूर्ति है। प्रेम और मृत्यु की देवी।"

"संभवतः मृत्यु की, परन्तु प्रेम की तो कतई नहीं।" पासपार्टआउट ने कहा।

पारसी ने उसे चुप हो जाने को कहा। रथ पर रखी मूर्ति के आसपास फकीरों का एक समूह बहुत ही विचित्र करतब कर रहा था। उघड़े बदन पर लाली पुती हुई और कई सारे ज़ख्मों से खून की बूंदें टपकती हुईं। हिन्दू अनुष्ठानों के दौरान ऐसे मूर्ख धर्मान्ध तो दौड़े चले आ रहे रथ के सामने भी कूद जाएंगे।

उनके पीछे पूर्वीय वेशभूषा में सजे-धजे ब्राह्मण, जो एक महिला को ला रहे थे। उस महिला से चला भी नहीं जा रहा था। एकदम अंग्रेज़ों जैसी गोरी-चिट्टी, काफी कम उम्र की महिला थी वो। उसके सिर, गले, कंधों पर गहने ही गहने थे। कानों में, बाहों पर, हाथों में, पैरों में, ऊंगलियों पर – मालाओं, चूड़ियों, अंगुठियों और खूब सारे अन्य गहनों से लदी हुई थी

वो। सिर पर सोने से बुना हुआ साफा बंधा हुआ था और मखमल के महीन कपड़ों में से उसकी बस हल्की-सी झलक मिल रही थी।

इस दृश्य के एकदम विपरीत उसके पीछे पालकी में एक शव उठाए जो लोग चल रहे थे उनकी कमर से नंगी तलवारें लटक रही थीं और हाथों में वे लंबी-लंबी बंदूक थामे हुए थे।

राजा की विशिष्ट वेशभूषा में सजा हुआ शव किसी बूढ़े व्यक्ति का था। जीवित रहते हुए जैसे कपड़े पहनता था वैसे ही कपड़े वो अभी भी पहने हुए था। मोतियों से जड़ी पगड़ी, रेशम और सोने से कढ़ाई किए वस्त्र, हीरों से जड़ा हुआ दुपट्टा, साथ में वे सब खूबसूरत हथियार भी थे जो किसी राजकुमार की धरोहर होते हैं।

और एकदम आखिर में थे वाद्ययंत्र बजाने वाले, जिनके साथ चल रहे कट्टरपंथियों की चिल्लाहट वाद्ययंत्रों के शोर को भी दबा देती थी।

यह जुलूस देख रहे सर फ्रांसिस क्रोमेटरी का चेहरा गमगीन हो गया और गाइड की तरफ मुड़ते हुए उन्होंने कहा, "सती।" पारसी महावत ने सिर हिलाया पर साथ ही उन्हें चुप रहने का इशारा किया। यह लंबा जुलूस धीरे-धीरे घने जंगल में ओझल हो गया। गाने-बजाने की आवाज़ बंद होने के बाद भी लोगों के चिल्लाने की आवाज़ आ रही थी और कुछ समय बाद एकदम निस्तब्धता छा गई। जैसे ही यह जुलूस ओझल हुआ फिलिस फॉग ने पूछा, "यह 'सती' क्या होता है?" उन्होंने सर फ्रांसिस को यह शब्द कहते हुए सुन लिया था।

सर फ्रांसिस ने जवाब दिया, "सती एक तरह की बलि है किन्तु ऐच्छिक बलि। अभी जिस महिला को आपने देखा उसे कल सुबह जला दिया जाएगा।"

"लुच्चे-बदमाश", पासपार्टआउट से न रहा गया।

फॉग ने पूछा, "शव का क्या होगा?"

"यह उसके पति का शव है जो बुंदेलखंड के एक स्वतंत्र राज्य का राजा था।" गाइड ने जवाब दिया।

"क्या हिन्दुस्तान में अभी भी ऐसी बर्बर रस्में मनाई जाती हैं?" फिलिस फॉग ने शांत स्वर में पूछा, "क्या अंग्रेज़ इन्हें खत्म नहीं कर पाए हैं?"

सर फ्रांसिस ने बताया, "हिन्दुस्तान के अधिकतर हिस्सों में अब ऐसी बलि नहीं होती परन्तु दूर-दराज़ के इलाकों पर हमारा नियंत्रण नहीं है। खासतौर पर बुंदेलखंड में। विंध्याचल की उत्तरी ढलानों पर स्थित इस पूरे ज़िले में

लगातार लूट-पाट और मार-काट होती रहती है।"

पासपार्टआउट ने कहा, "बेचारी महिला। ज़िंदा जलाया जाना!"

सर फ्रांसिस ने जवाब दिया, "हां ज़िंदा जल जाना। और तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि अगर वो जला नहीं दी जाती तो उसके रिश्तेदारों से उसे क्या-क्या सहना पड़ता। वे उसका सिर मूंड देते, खाने को थोड़े से चावल की भीख दी जाती, उसे अपवित्र कहकर दुत्कार दिया जाता और बीमार कुत्ते की तरह उसे किसी कोने में मरने के लिए छोड़ दिया जाता। इसलिए ऐसी ज़िंदगी जीने के बजाए वे बेचारी जलकर आत्महत्या कर लेने का रास्ता अपनाती हैं। किन्हीं धार्मिक अनुष्ठानों में विश्वास की वजह से नहीं।"

उन्होंने जारी रखा, "कई बार यह बलि सचमुच में स्वैच्छिक होती है और उसे सरकार को रोकने के लिए ज़ोर-ज़बर्दस्ती करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए कुछ साल पहले मैं बंबई में रहता था तब एक जवान विधवा ने अपने पति के शव के साथ खुद जल जाने की अनुमति गवर्नर से मांगी। स्वाभाविक है कि गवर्नर ने इंकार कर दिया। तो विधवा ने वो शहर छोड़ दिया और एक स्वतंत्र राजा की शरण में जाकर अपनी बलि देने की प्रतिज्ञा को पूरा किया।"

जब सर फ्रांसिस यह वाकिया सुना रहे थे तो गाइड लगातार सिर हिला रहा था। जब फ्रांसिस ने अपना किस्सा पूरा किया तो गाइड ने कहा, "कल भोर की बेला में जो बलि दी जाएगी वो स्वैच्छिक नहीं है।"

"तुम्हें कैसे मालूम?"

"बुंदेलखंड में सब इस किस्से से वाकिफ हैं।" गाइड ने जवाब दिया।

सर फ्रांसिस ने कहा, "परन्तु यह बेचारी महिला तो किसी भी तरह प्रतिरोध करती नज़र नहीं आ रही।"

"इसलिए क्योंकि उसे अफीम, भांग और गांजे के धुएं से बेसुध-सा कर दिया गया है।"

"पर वे उसे ले कहां जा रहे हैं?"

"यहां से दो किलोमीटर दूर स्थित पिल्लगी के मंदिर में। बलि के मुहूर्त का इंतज़ार करते हुए वह रात वहां गुज़ारेगी।"

"और बलि कब दी जाएगी?"

"कल एकदम सुबह।"

ऐसा कहते हुए महावत ने घने जंगल में से हाथी को निकाला और उसकी गर्दन पर चढ़ गया। पर जैसे ही वो अपनी विशेष सीटी बजाकर हाथी को आगे बढाने वाला था फिलिस फॉग ने उसे रोका और सर फ्रांसिस

से कहा, "अगर हम इस महिला को बचा लें तो?"

"महिला को बचा लें, मिस्टर फॉग!" ब्रिगेडियर चिल्लाए।

"मेरे पास अभी भी बारह घंटे बचे हुए हैं। उनका इस्तेमाल मैं इस काम के लिए कर सकता हूं।"

"क्या बात है! आप सचमुच दिलदार हैं।" सर फ्रांसिस ने आश्चर्य के साथ कहा।

"कभी-कभी, जब मेरे पास समय होता है।" फिलिस फॉग ने शांति से जवाब दिया।

**

मुश्किलों से भरा हुआ काम था यह, शायद एकदम असंभव। मिस्टर फॉग अपनी ज़िंदगी दांव पर लगा रहे थे या कम-से-कम अपनी स्वतंत्रता – और इस वजह से उनकी योजनाओं पर पानी फिर सकता था। परन्तु फिर भी वे बिल्कुल नहीं हिचकिचाए, और अब उन्हें दृढ़संकल्प साथी के रूप में सर फ्रांसिस क्रोमेटरी मिल गया था। पासपार्टआउट तो अपने मालिक के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार था ही, और उसे यह विचार उत्साहित कर रहा था।

उसे लगा कि इस बर्फिले मुखौटे के अंदर भी गर्मजोशी से भरा और दिलदार इंसान है, और अचानक उसे फिलिस फॉग पर खूब प्यार उमड़ आया।

अब सवाल यह था गाइड क्या तय करेगा? क्या वो हिन्दुओं का साथ देगा? अगर वे उसे अपनी ओर न कर पाएं तो भी उन्हें यह तो सुनिश्चित करना ही पड़ेगा कि वो किसी की भी तरफदारी न करे। सर फ्रांसिस ने उससे साफ-साफ पूछ लिया।

गाइड ने जवाब दिया, "मैं पारसी हूं और यह महिला भी पारसी है। मैं इस प्रयास में आपके साथ हूं।"

"बढ़िया।" फिलिस फॉग ने कहा।

"पर मैं इतना ज़रूर बता दूं कि इस कोशिश में न सिर्फ हम लोगों की जान जा सकती है, पर अगर हम पकड़े गए तो भयानक यातनाएं सहनी पड़ सकती हैं। इसलिए जो भी तय करना है सोच विचार कर तय करो।" गाइड ने अपनी बात जारी रखी।

"वो तो तय हो चुका है।" मिस्टर फॉग ने जवाब दिया, "मुझे लगता है कि हमें आगे कुछ करने से पहले अंधेरे का इंतज़ार करना चाहिए।"

"मेरी भी यही सलाह है।" गाइड ने जवाब दिया। इसके बाद गाइड ने उन्हें उस महिला के बारे में कुछ जानकारी दी। वो बंबई के एक धनी व्यापारी की खूबसूरत बेटी थी। उसे

वहां उम्दा किस्म की अंग्रेज़ी शिक्षा मिली थी। उसके तौर-तरीके देखकर अक्सर यह पता करना मुश्किल था कि वह यूरोपियन नहीं है। उसका नाम औदा था। अनाथ होने के कारण इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी बुंदेलखंड के इस बूढ़े राजा के साथ कर दी गई थी। शादी के तीन महिने बाद वो विधवा हो गई और यह जानते हुए कि उसके भाग्य में क्या है वो घर से भाग गई। परन्तु उसे फिर से पकड़ लिया गया और राजा के रिश्तेदार चाहते हैं कि उसे खत्म कर दिया जाए क्योंकि यह उनके हित में है। इसलिए अब उसके लिए बचने का कोई रास्ता नहीं है।

किस्सा सुनकर मिस्टर फॉग और उनके साथियों का इरादा और भी पक्का हो गया। तय हुआ कि गाइड हाथी को पिल्लगी के मंदिर की ओर ले जाए, जितना ज़्यादा-से-ज़्यादा करीब जाना संभव हो।

आधे घंटे बाद वे मंदिर से तकरीबन पांच सौ गज की दूरी पर झाड़ियों के एक झुंड की आड़ में रुके। मंदिर धुंधला-सा दिख रहा था परन्तु उन्मादित कट्टरपंथियों की चीख-पुकार स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

वहां पहुंचने पर उस महिला तक

पहुंचने के तरीकों की चर्चा हुई। जिस मंदिर में महिला को कैद करके रखा गया था उससे गाइड परिचित था। क्या यह संभव होगा कि रात में जब पूरी भीड़ गहरी नींद में हो तो दरवाज़े से अंदर घुस जाएं या फिर दीवार में छेद करना पड़ेगा? इसका जवाब तो समय और हालात को देखकर ही मिलेगा। लेकिन यह सभी को साफतौर पर मालूम था कि महिला को छुड़ाने की कोशिश उसी रात को करनी होगी। भोर हो जाने के बाद जब उस महिला को मृत्यु के मुंह में धकेलने के लिए ले जाया जाएगा उस समय ऐसी किसी कोशिश का कोई फायदा नहीं होगा।

✱✱

मिस्टर फॉग और उनके साथी रात होने का इंतज़ार करते रहे। जैसे ही अंधेरा हुआ, छः बजे के करीब उन्होंने मंदिर का एक चक्कर लगाने का तय किया। फकीरों की चिल्लाहट लगभग थम-सी गई थी, रस्मों-रिवाज़ के मुताबिक हिन्दुस्तानी कुछ ही देर में भांग के नशे में धुत हो जाने वाले थे। ऐसे में शायद उनके बीच से निकलकर मंदिर तक पहुंचना संभव हो।

गाइड के पीछे-पीछे मिस्टर फॉग, सर फ्रांसिस और पासपार्टआउट ने बिना किसी तरह का शोर किए मंदिर का चक्कर लगाना शुरू किया। पेड़ों-झाड़ियों के पीछे छुपते हुए दस मिनट तक आगे बढ़ने के बाद वे एक नदी के किनारे पहुंचे। वहां से उन्हें मशालों की रोशनी में लकड़ी का एक ढेर दिखाई दिया। यह चंदन की लकड़ियों पर सुगंधित तेल छिड़ककर बनाई गई एक चिता थी। उस पर राजा का शव रखा गया था जिसे अगले दिन उस विधवा के साथ जलाया जाना था। मंदिर चिता से सौ गज की दूरी पर था और यहां से उसके गुम्बद धुंधले-से दिख रहे थे। गाइड के कहने पर वे अत्यंत सतर्कतापूर्वक आगे बढ़ने लगे। अब रात की नीरवता में केवल हवा के बहने की आवाज़ आ रही थी।

पेड़ों के झुरमुट के अंत तक पहुंचकर गाइड रुक गया। खुले में कुछेक मशालें जल रही थीं और ज़मीन पर नशे में बेसुध नींद में पुरुषों के समूह इधर-उधर सो रहे थे। ऐसा नज़ारा था मानों युद्ध के मैदान में लाशें बिखरी पड़ी हों। पुरुष, महिलाएं और बच्चे पास-पास लेटे हुए थे। कही-कहीं खर्राटों की आवाज़ सुनाई दे जाती थी।

इस मैदान के पीछे पेड़ों से घिरा हुआ पिल्लगी का मंदिर था। गाइड को यह देखकर अत्यन्त हताशा हुई कि मंदिर के दरवाज़े पर सिपाही निगरानी रखे हुए थे और खुली तलवारें

पकड़े हुए पहरा दे रहे थे। इसे देखकर तो ऐसा लगता था कि ज़रूर अंदर भी पुजारी निगरानी रख रहे होंगे।

यह भांपकर कि ज़ोर-जबर्दस्ती करके मंदिर में नहीं घुसा जा सकता, गाइड ने अपने साथियों से वापस चलने के लिए कहा। फिलिस फॉग और सर फ्रांसिस ने भी महसूस किया कि ऐसी कोई कोशिश फिज़ूल होगी।

"कुछ देर इंतज़ार कर लेते हैं। अभी आठ ही बजे हैं, हो सकता है कि कुछ देर बाद सिपाही सो जाएं।" ब्रिगेडियर ने कहा।

पारसी ने कहा, "हां, ऐसा संभव है।" इसलिए फिलिस फॉग और उनके साथी एक पेड़ के नीचे बैठकर इंतज़ार करने लगे। पारसी फिर एक बार देखने गया लेकिन सिपाही अभी भी मुस्तैदी से पहरा दे रहे थे। इस तरह वे आधी रात तक इंतज़ार करते रहे परन्तु स्थिति वैसी ही बरकरार थी – सिपाही उसी तरह लगातार पहरे पर डटे हुए थे। उन्हें शायद भांग नहीं पिलाई गई थी। इसलिए ज़रूरी हो गया कि कोई नई योजना बनानी होगी – मंदिर में घुसने के लिए दीवार में छेद करना ही पड़ेगा।

परन्तु ऐसा कोई कदम उठाने से पहले यह पता करना ज़रूरी था कि क्या पुजारी भी सिपाहियों जैसी मुस्तैदी से निगरानी कर रहे हैं। वे लंबा चक्कर लगाकर मंदिर के पिछवाड़े तक पहुंचे और मंदिर की दीवार तक साढे बारह बजे पहुंचे। इस तरफ कोई पहरेदार नहीं था – पर कोई दरवाज़ा या खिड़की भी नहीं थी।

अंधेरी रात थी। कृष्ण पक्ष के आखिरी दिनों का चांद क्षितिज के आसपास ही मंडरा रहा था। उस पर आसमान में बादल छाए हुए थे और खूब ऊंचे-ऊंचे पेड़ों ने अंधेरे को और भी गहरा दिया था।

दीवार तक पहुंचना ही काफी नहीं था, उसमें से रास्ता बनाना ज़रूरी था – और इस काम के लिए उनके पास जेब में रखने वाले छोटे चाकुओं के अलावा और कुछ नहीं था। किस्मत से मंदिर की दीवार ईंट और लकड़ी की बनी हुई थी जिसे आसानी से भेदा जा सकता था। एक बार एक ईंट बाहर निकल आए तो बाकी आसानी से बाहर निकल आतीं।

वे बिना किसी प्रकार का शोर किए इस काम में मशगूल हो गए। पारसी और पासपार्टआउट दोनों ईंटों को निकालकर दो फुट का छेद बनाने में जुट गए। वे काफी तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे कि अचानक अंदर से चीख की आवाज़ आई।

इस चीख के जवाब में बाहर से कई चीखें सुनाई दीं। क्या लोगों को

छेद के बारे में पता चल गया है? क्या इसलिए सबको खबर दी जा रही है? यह सब सोचकर वे सब वापस पेड़ों की आड़ में छिप गए। कुछ ही देर में मंदिर के पिछवाड़े की तरफ सिपाही पहुंच गए – और इस तरह खड़े हो गए कि अब मंदिर की दीवार तक पहुंचना ही असंभव था।

अब इस समस्या का कोई समाधन नज़र नहीं आ रहा था – वे चारों बहुत उदास हो गए क्योंकि जब उस महिला तक पहुंचा ही नहीं जा सकता तो उसे बचाने की तो कोई आशा नहीं थी।

सर फ्रांसिस बहुत गुस्से में थे, पासपार्टआउट को तो कुछ समझ में नहीं आ रहा था और गाइड अपने आपको मुश्किल से चुप रख पा रहा था। केवल सदैव की तरह शांत फॉग बिना परेशान हुए इंतज़ार करते रहे।

"अब हम यही कर सकते हैं कि यहां से चले जाएं।" ब्रिगेडियर ने धीमे से सुझाव दिया।

"हां, हमें चल देना चाहिए क्योंकि अब कुछ करना संभव नहीं है।" गाइड ने भी कहा।

"थोड़ी देर इंतज़ार कर लेते हैं।" फॉग ने कहा, "क्योंकि मुझे कल दोपहर से पहले इलाहाबाद पहुंचने की ज़रूरत नहीं है।"

"परन्तु अब क्या आशा है आपको?" सर फ्रांसिस ने पूछा, "चंद घंटों बाद भोर हो जाएगी और ...।"

"अभी जो मौका हमारे हाथ से निकल गया है वो शायद अंतिम समय पर फिर हाथ आ जाए।" फॉग ने कहा।

ब्रिगेडियर सोच रहा था कि काश वो फिलिस फॉग का चेहरा पढ़ पाता। यह अंग्रेज़ इस वक्त आखिर क्या सोच रहा है? क्या इसने आखिरी समय में महिला को छुड़ाने का इरादा बनाया है – अंतिम क्षणों में जल्लादों के हाथों से उसे छुड़ाकर ले जाने का? यह तो एकदम मूर्खता होगी और ऐसा लगता नहीं कि यह आदमी इतना पागल होगा। फिर भी सर फ्रांसिस को लगा कि अब इस भयावह ड्रामे का अंत देख ही लेना चाहिए।

गाइड उन्हें फिर से पेड़ों के झुरमुट वाली शुरुआती जगह की ओर ले गया। वहां से बेसुध सोए हुए लोगों का जमघट दिख रहा था।

इस बीच पेड़ के नीचे वाली शाखाओं पर बैठा पासपार्टआउट विचार मग्न था। उसे जब यह विचार आया तो पहले तो उसने सोचा कि यह तो पागलपन होगा, परन्तु अब वह बुदबुदा रहा था, "क्यों नहीं, अब यही तो एक तरीका बचा है।" इतना कहते-कहते वह सांप की तरह ज़मीन

की ओर सरकने लगा।

**

कुछ घंटे गुज़रने पर आसमान का रंग हल्का पड़ने से समझ में आने लगा कि अब भोर की बेला आने वाली है। बस अब समय हो गया था। भीड़ तंद्रा में से उठने लगी मानों मृत्यु से उठ खड़े हुए हों लोग।

गाने-चीखने और वाद्ययंत्रों की आवाज़ फिर से शुरू हो गई। अब वह घड़ी आ गई थी जब बेचारी महिला को जला दिया जाएगा। मंदिर के द्वार अचानक खुल गए और अंदर की तेज़ रोशनी दिखाई दी। मिस्टर फॉग और सर फ्रांसिस को अब वो महिला स्पष्ट दिखाई दे रही थी। दो पुजारी उसे बाहर ला रहे थे। उन्हें ऐसा भी लगा कि बेहोशी की तंद्रा में से निकलकर वह अपनी जान बचाने के लिए छूटकर भागने की कोशिश कर रही है। सर फ्रांसिस का दिल तेज़ी से धड़कने लगा और उन्होंने फॉग का हाथ पकड़ लिया। तब उन्हें समझ में आया कि फॉग के हाथ में छुरा है।

तभी भीड़ भी आगे बढ़ने लगी। वो महिला फिर से बेसुध-सी हो गई थी और मंत्रोच्चार करते हुए फकीरों के बीच में से गुज़र रही थी।

फिलिस फॉग और उनके साथी भी भीड़ के आखिरी हिस्से में मिल गए। दो मिनिट में वे नदी के किनारे पहुंच गए और चिता से पचास गज की दूरी पर रुक गए। चिता पर रखे राजा के शव के साथ महिला को लिटा दिया गया था और वो बिल्कुल भी हिलडुल नहीं रही थी।

तब तेल में भीगी चिता को मशाल लगाते ही लपटें भड़क उठीं। फिलिस फॉग तो बस कूद ही जाना चाहते थे लेकिन सर फ्रांसिस और गाइड ने उन्हें ज़बर्दस्ती पकड़कर रोक लिया। परन्तु फॉग इतने जोश में थे कि उन्होंने दोनों को धकेल दिया। और तभी तेज़ी से दृश्य बदलने लगा।

डर के मारे चीखते हुए सब लोग ज़मीन पर नतमस्तक हो गए। बूढ़ा राजा मरा नहीं था क्योंकि महिला को अपने हाथों में उठाए वह भूत की तरह उठ खड़ा हुआ। धुएं के गुब्बार में चिता से उतरती हुई आकृति पिशाच जैसी दिख रही थी।

डर के मारे सब फकीर, सिपाही, और पुजारी नतमस्तक थे और इस आलौकिक घटना की तरफ आंख उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं कर रहे थे।

मज़बूत बांहें बेहोश महिला को उठाए हुए थीं, मानों कि उसका कुछ वज़न ही न हो।मिस्टर फॉग और सर

फ्रांसिस अपनी जगह जड़ हो गए थे, पारसी ने अपना सिर झुका लिया था और पासपार्टआउट भी उतना ही हैरान रहा होगा।

वो आदमी चिता से उठकर मिस्टर फॉग और सर फ्रांसिस तक पहुंचा और उसने अचानक आदेश दिया, "अब भाग चलना चाहिए।"

यह कोई और नहीं पासपार्टआउट था जो गहरे धुंए और सुबह के धुंधलके का सहारा लेकर चिता तक पहुंच गया था और इस जवान औरत को मौत के जबड़ों में से खींच लाया था। वह पासपार्टआउट ही था जो डरी हुई भीड़ में से बेधड़क निकलकर यहां तक आ पहुंचा था।

क्षण भर में चारों जंगल में गुम हो गए और अब हाथी उन्हें तेज़ी से ले जा रहा था। परन्तु चीख-पुकार के शोर-शराबे और फिलिस फॉग की टोपी में बंदूक की गोली के छेद से उन्हें समझ में आया कि लोगों को समझ में आ गया था कि क्या हुआ।

चिता पर राजा का शव धड़ल्ले से जल रहा था और पुजारियों ने अपने डर पर काबू पा लिया था। उन्हें समझ में आ गया कि कुछ लोग औरत को उनके चंगुल से छुड़ा ले गए हैं। इसलिए पुजारी और उनके पीछे सिपाही भी जंगल में घुस गए। भाग रहे काफिले पर गोलियां भी दागी गई परन्तु कुछ ही देर में वे गोलियों और तीरों के दायरे से बाहर पहुंच चुके थे।

**(शेष अगली किश्त में)**

***किऔनी हाथी का क्या किया गया? हिंदुस्तान में फिलिस और किन-किन मुसीबतों में फंसे? अगली किश्त में तफ्सील से पढ़िए आगे का सफर।***

---

ज्यूल्स वर्न (1828–1905) की मशहूर कहानी 'अराउंड द वर्ल्ड इन एटी डेज़' से।
**अनुवाद:** राजेश खिंदरी। संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।
**सभी चित्र:** वी. एम. भोंडे।

## सीखना-सिखाना

- बाल वैज्ञानिक – कक्षा 6, 7, 8
- सामाजिक अध्ययन – कक्षा 6, 7, 8
- खुशी–खुशी – कक्षा 1 से 5
- बच्चे असफल कैसे होते हैं
- सीखना–सिखाना
- सामाजिक अध्ययन शिक्षण : रपट
- विज्ञान क्या है
- इतिहास क्या है
- प्रश्न बैंक

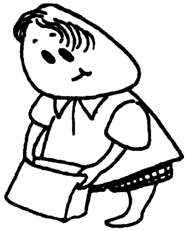

## जन विज्ञान

- टिकाऊ खुशहाली
- बोल अरी ओ धरती बोल
- जवाब दर सवाल
- जनविज्ञान का सवाल
- बेटी करे सवाल
- बोलो तुम क्या चुप बैठोगे

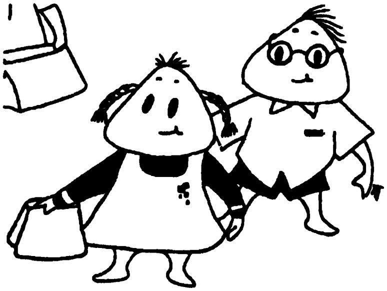

## एकलव्य की नियमित पत्रिकाएँ

**चकमक**
मासिक बाल विज्ञान पत्रिका
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 100.00

**स्त्रोत**
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 150.00

**संदर्भ**
द्वैमासिक पत्रिका
वार्षिक सदस्यता शुल्क रु. 50.00

*विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क:*

एकलव्य, ई-1/25 अरेरा कॉलोनी,
भोपाल – 462016 म.प्र.
फोन-563380, फैक्स-561703

# चितियों का निर्माण यानी ईंटों का जोड़-घटा

रामकृष्ण भट्टाचार्य

पिछली बार हमने चिति निर्माण में उपयोगी प्रमेयों को देखा तो यह अहसास होने लगा कि चितियों को बनाने में कितनी ज्यामिति की आवश्यकता होती थी। लेकिन इसके बाद मसला थोड़ा टेढ़ा है क्योंकि चिति का आकार तो महत्वपूर्ण था ही, साथ ही चिति का क्षेत्रफल और उसकी प्रत्येक परत में लगाई जाने वाली ईंटों की संख्या भी निश्चित थी। इन सबका ध्यान रखते हुए भी चितियों को कलात्मक व आकर्षक बनाने की कोशिश लगातार होती रही।

श्येन चिति को प्रकृति या सभी चितियों का मूल कहा गया है, ऐसा क्यों? यदि हम प्रथम प्रकार अर्थात चतुरस्र श्येन चिति को देखें तो इस क्यों का जवाब मिलने लगता है। यह सबसे प्राचीन स्वरूप है जिसे चार प्रकार की वर्गाकार ईंटों से बनाया जाता है। इन चार प्रकार की ईंटों को चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी व दशमी कहते हैं क्योंकि इनकी भुजाएं क्रमशः एक पुरुष की 1/4, 1/5, 1/6 व 1/10 होती हैं। दूसरे प्रकार की श्येन चिति में वर्गाकार पंचमी और दशमी ईंटों के अलावा दो अलग-अलग किस्म की आयताकार ईंटों का भी उपयोग होता है। उपरोक्त चार प्रकार की 160, 2, 8 व 30 ईंटे नीचे चित्र में दर्शाए अनुसार जमाना है। इससे गरूड़ का धड़, डैने और पूंछ बन जाते हैं। (चित्र-1, तालिका-1)। यह सही है कि उक्त आकृति हूबहू गरूड़ जैसी तो नहीं है किन्तु चतुरस्र श्येन चिति की सबसे निचली परत शुरुआत में इसी तरह बनाई गई थी। तीसरी व पांचवीं परत में ईंटों की व्यवस्था समान होती है।

दूसरी व चौथी परतों में इसी तरह की 165, 4, 6 व 25 ईंटें लेकर

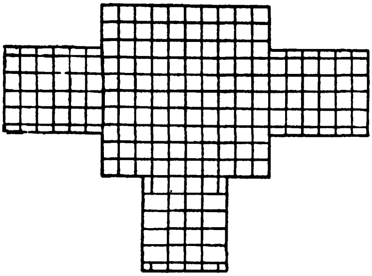

चित्र-1: चतुर्सरा श्येन चिति में परत 1, 3, 5 की जमावट।

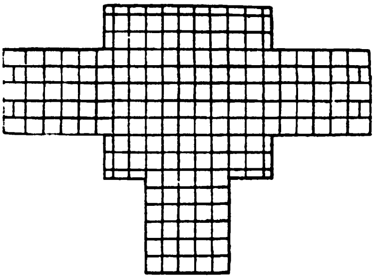

चित्र-2: चतुर्सरा श्येन चिति में परत 2, 4 की जमावट।

**तालिका:1 चतुर्सरा श्येन चिति (प्रकार:2, परत 1, 3, 5)**

| क्र. | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 24 | 576 | 160 | 92160 |
| 2 | आयत | 24,36 | 864 | 8 | 6912 |
| 3 | आयत | 12,24 | 288 | 30 | 8640 |
| 4 | वर्ग | 12 | 144 | 2 | 288 |
| | | | *योग* | *200* | *108000* |

**तालिका:2 चतुर्सरा श्येन चिति (प्रकार: 2, परत 2, 4)**

| क्र. | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 24 | 576 | 165 | 95040 |
| 2 | आयत | 24,36 | 864 | 6 | 5184 |
| 3 | आयत | 20 | 288 | 25 | 17200 |
| 4 | वर्ग | 12 | 144 | 4 | 576 |
| | | | *योग* | *200* | *108000* |

उन्हें प्रस्तुत चित्र के अनुसार जमाना है। अब अनुष्ठान की समस्त शर्त्तें पूरी हो गई हैं: प्रत्येक परत में 200 ईंटें हैं अर्थात् पूरी चिति में कुल 1000 ईंटें हुईं और इसका क्षेत्रफल 7.5 पुरुष यानी 1,08,000 वर्ग अंगुल हुआ। (चित्र-2, तालिका-2)

यजुर्वेद के मैत्रायणिया मत में आयताकार ईंटों का उपयोग वर्जित है। आयताकार ईंटों का उपयोग धर्म-

निरपेक्ष इमारतों (जैसे घर आदि) के निर्माण में होता है, धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित संरचनाओं में नहीं। अलबत्ता ईंटों के प्रकार में इस परिवर्तन ने पक्षी-आकार की श्येन चिति के निर्माण में परिष्कार व कलात्मकता का मार्ग प्रशस्त किया। यजुर्वेदी ब्राह्मणों ने घोषणा की कि अग्नि का निर्माण पक्षी की प्रतिमा के रूप में होता है। बौधायन में इस विचार की व्याख्या यों की गई है कि 'यह (अग्नि) उड़ते हुए पक्षी की छाया के अनुरूप बनाई जाना चाहिए'; हालांकि चिति में पांच परतें हैं किन्तु महत्व मात्र पांचवी (यानी सबसे ऊपरी) परत का है: ऊपर से देखने पर यह किसी उड़ते हुए पक्षी की छाया समान दिखाई देनी चाहिए। अब स्थिति यह थी कि उड़ते पक्षी या उसकी छाया से साम्य न तो पहले प्रकार की श्येन चिति का था, न दूसरे प्रकार की। यजमान को तो पुरोहित पर विश्वास रखना पड़ता था कि जो संरचना बनी है वह श्येनचिति है।

अब एक कलाकार आया जिसने पक्षी की एक श्येन चिति बनाई जिसमें सिर था (जो दोनों चतुरस्र चितियों में नदारद था), मुड़े हुए डैने थे और फैली हुई पूंछ थी (जो चतुरस्र चितियों

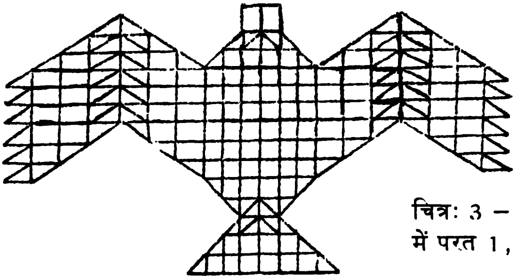

चित्र: 3 – पक्षी के आकार की श्येन चिति में परत 1, 3, 5 में ईंटों की जमावट।

**तालिका:3 श्येन चिति (प्रकार:2, परत 1,3,5) पक्षी के आकार की**

| क्र | आकार | भुजाएं | ऊंचाई | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 24 | | 576 | 54 | 31104 |
| 2 | आयत | 24,36 | | 864 | 40 | 34560 |
| 3 | आयत | 24,30 | | 720 | 2 | 1440 |
| 4 | तिकोनी | $24, 24, 24\sqrt{2}$ | 24 | 288 | 28 | 8064 |
| 5 | तिकोनी | $24, 36, 12\sqrt{13}$ | 36 | 432 | 76 | 32832 |
| | | | | योग | 200 | 108000 |

में प्रतीक रूप में ही थे)। पक्षी आकार की यह चिति प्रकृति के ज़्यादा अनुरूप थी और दिखने में अधिक लुभावनी थी। चतुरसु श्येन चित का निर्माण तो कोई ज्यामितिकार कर सकता था किन्तु पक्षी आकार की चिति बनाने में कलाकार की ज़रूरत होती थी। ये चितियां भी दो प्रकार की होती थीं। चित्र-3, तालिका-3।

इन्हें बनाने के लिए आयताकार के अलावा त्रिभुजाकार ईंटों की भी ज़रूरत होती थी। अन्यथा डैनों को इतना प्राकृतिक रूप में दर्शाना संभव नहीं था। अनुष्ठान के निर्देशों से प्रथम विचलन तो तब हुआ जब अग्नि के निर्माण मानुष (यानी आयताकार) ईंटों का प्रयोग शुरू हुआ। और अब तो अन्य आकृतियां रची व उपयोग की जाने लगीं। तो समय के साथ वर्गाकार के अलावा अन्य आकृतियों की ईंटें भी प्रचलन में आती गईं। दरअसल वक्रपक्ष व्यवस्पुच्छ श्येन चिति में तो एक समलम्बक ईंट का उपयोग भी किया जाता है।

पक्षी आकार की इन चितियों के रचियता की अक्लमंदी गौरतलब है। उसे ईंटों की संख्या और चिति के क्षेत्रफल दोनों मर्यादाओं का ध्यान रखना है, चाहे चिति की आकृति कुछ भी हो। इसी प्रकार से किसी भी परत में ईंटों को इस तरह जमाना होगा कि वे अपने से निचली परत की ईंटों के बीच की खाली जगह या जोड़ों को ढंक लें। और किसी भी हालत में वह अग्नि की सममित व्यवस्था के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकता। यदि ऐसे कठोर नियम न होते तो काम बहुत आसान होता। उदाहरण के लिए श्मशान चिति को देखा जा सकता है (जिसका पार्श्व चित्र अंक 31, पृष्ठ 65 पर दिया जा चुका है)।

यह समलम्बक के आकार की चिति होती है। इसकी समान्तर भुजाएं क्रमशः 2 व 3 पुरुष लम्बी होती हैं और ऊंचाई 6 पुरुष होती है। किन्तु यहां पुरुष का अर्थ रेखीय माप (120 अंगुल) से न होकर क्षेत्रफल के माप से है। यह छोटा पुरुष है जो 84 अंगुल 20 तिल के बराबर है। चिति के लिए ईंटों की जमावट निम्नानुसार होगी। देखिए तालिका 4 एवं 5।

यहां तक तो सब ठीक-ठाक है। परन्तु सवाल है कि विभिन्न ईंटों की आकृतियों व आकारों का निर्धारण कैसे होता था? बौधायन इस संबंध में विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। यह जानकारी निम्नानुसार है: 7.5 पुरुष (108,000 वर्ग अंगुल) के वर्ग को 15 बराबर-बराबर वर्गों में बांटिए। प्रत्येक का क्षेत्रफल 108000/15 = 7200 वर्ग अंगुल होगा। अब एक आयत बनाइए जिसकी भुजाएं क्रमशः

चित्र–4: ईंटों की आकृतियों और आकारों के निर्धारण के लिए बौधायन में बताया गया फॉर्मूला।

$\sqrt{7200}/2$ यानी 10 $\sqrt{72}/2$ तथा $\sqrt{7200}/3$ यानी 10 $\sqrt{72}/3$ हों। (देखिए चित्र-4)

इस आयत (ABCD) में E (AB के मध्य बिन्दु) तथा C और D जोड़कर तीन त्रिभुज बनाइए। रेखा EC व CD को चार बराबर-बराबर भागों में बांटिए और फिर LG, MF, NH, HK, FJ तथा GI को जोड़ दीजिए। त्रिभुज ECD का क्षेत्रफल है:

$1/2 \times 3 \times 10\sqrt{72} \times 10\sqrt{72} \times 1/2 = 3/4\ (7200)$

$= 5400$ वर्ग अंगुल

यह पूरे बड़े वर्ग के 1/20 भाग को ढंकेगा।

अब इस तरह विभाजित त्रिभुज से हमारे पास छः उभयतः प्रउग तथा चार प्रउग आकार की ईंटें हैं। प्रत्येक उभयतः ईंट का क्षेत्रफल 675 वर्ग अंगुल तथा प्रत्येक प्रउग ईंट का क्षेत्रफल 337.5 वर्ग अंगुल है। अतः श्मशान चिति की पहली परत 120 उभयतः प्रउग तथा 80 प्रउग ईंटों से बन जाती है और इनका कुल क्षेत्रफल 7 (1/2)पुरुष होता है।

दूसरी परत को पहले एक आयत व उसके दोनों ओर दो त्रिभुजों में बांट दिया जाता था। प्रत्येक समकोण त्रिभुज को तीन महाचतुस्र और तीन महाप्रउग बृहति ईंटों से ढंक दिया जाता है। आयत को 100 व 88 अर्ध्या ईंटों से ढंका जाता है। (चित्र-5)

गौरतलब है कि पहली (या तीसरी या पांचवीं) परत को एक समान आकार व आकृति की 320 प्रउग ईंटों से भी ढंका जा सकता है। इसी प्रकार से दूसरी (और चौथी) परत के लिए 6 महाचतुस्र और 6 महाप्रउग के अलावा 144 बृहति ईंटों की ज़रूरत होगी। किन्तु इनमें से किसी भी विकल्प को अपनाएं, नियम का उल्लंघन होगा। दोनों ही मामलों में ईंटों की संख्या निर्धारित 200 से कम या ज़्यादा हो जाएगी। इसलिए उभयतः प्रउग ईंटें (प्रउग को दोहरा

## तालिका:4 श्मशान चिति ( परत 1,3,5 )

| क्र | आकार | भुजाएं | | ऊंचाई | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | तिकोन | $\underline{100\sqrt{72}}$ | $\underline{30\sqrt{72}}$ | $\underline{10\sqrt{72}}$ | 337.5 | 80 | 27000 |
| 2 | समलंबक | | | | 675 | 120 | 81000 |
| | | | | | योग | *200* | *108000* |

## तालिका:5 श्मशान चिति ( परत 2,4 )

| क्र | आकार | भुजाएं | | ऊंचाई | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | आयत | $\frac{10\sqrt{72}}{4}$ | $\frac{10\sqrt{72}}{3}$ | $\frac{10\sqrt{72}}{4}$ | 600 | 100 | 60000 |
| 2 | आयत | $\frac{10\sqrt{72}}{4}$ | $\frac{10\sqrt{72}}{6}$ | $\frac{10\sqrt{72}}{4}$ | 300 | 88 | 26400 |
| 3 | तिकोन | $20\sqrt{72}$ | $\frac{10\sqrt{72}}{6}$ | $10\sqrt{290}$ | 1200 | 6 | 7200 |
| 4 | आयत | $20\sqrt{72}$ | $10\sqrt{72}$ | | 2400 | 6 | 14000 |
| | | | | | | *योग 200* | *108000* |

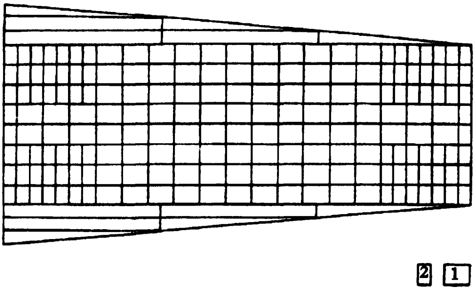


**चित्र–5: श्मशान चिति की चौथी परत जिसमें आयत को 188 ईंटों से बनाया गया है। शेष 12 ईंटें इस आयत के दोनों ओर बनाए गए समकोण त्रिभुज को बनाने में इस्तेमाल की गई हैं।**

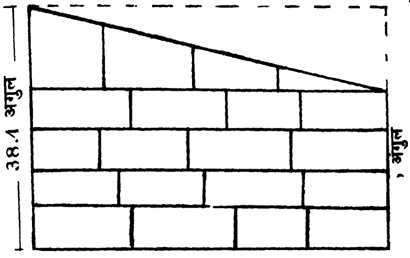


चित्र–5 अ: श्मशान चिति की पांचवीं परत और अंतिम परत को ढालदार बनाना होता है इसलिए इस परत में कुछ ईंटों की ऊंचाई ज़्यादा होती थी और कुछ की कम। एक पूरी बनी चिति में दाईं ओर ऊंचाई 38.4 अंगुल होना चाहिए तथा बाईं ओर 25.6 अंगुल होना चाहिए।

करके) और अर्ध्याबृहति (बृहति की आधी) ईंटें बनाना पड़ती थीं। अन्य चितियों में 200 की जादुई संख्या को पूरा करने के लिए ईंटों को छोटा-बड़ा करना ज़रूरी हो जाता है।

श्मशान चिति में एक और रोचक बात है। इस चिति के अलावा शेष समस्त चितियों में 5 परतों की कुल ऊंचाई घुटने तक (यानी 32 अंगुल) होनी चाहिए और प्रत्येक परत की ऊंचाई 32/5 अंगुल होनी चाहिए। किन्तु श्मशान चिति के मामले में सबसे ऊपरी परत थोड़ी अलग होती है। यहां इसकी ऊंचाई (32/5) ×2 = 12.8 अंगुल हो, ऐसा निर्देश है। इस तरह से चिति की कुल ऊंचाई 38.4 अंगुल हो जाती है। किन्तु यह ऊंचाई सिर्फ बाईं ओर की है। सबसे ऊपरी परत की ऊंचाई क्रमिक रूप से घटाई जाती है। ताकि दाईं और इस चिति की ऊंचाई 25.6 अंगुल हो। (चित्र: 5 अ)

किन्तु इससे श्मशान चिति के कुल आयतन में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। इसका आयतन तो 34,56,000 घन अंगुल (108,000 × 25.6) + 108,000 × 12.8 ×1/2) = 108,000 (25.6 + 6.4) = 108000×32 अंगुल रहेगा।

हमने पहले ही दिखा दिया है कि यजुर्वेद तथा ब्राह्मणों में स्पष्ट निर्देश न होने की वजह से श्रौत और शुल्व सूत्रों को कुछ चितियां बनाने के वैकल्पिक निर्देश देना पड़े। उदाहरणार्थ बौधायन में द्रोण व कूर्म चिति बनाने के लिए दो अलग-अलग निर्देश दिए गए हैं। निर्देशों के प्रथम समूह में वर्गाकार (चतुरस्त्र) चिति तथा दूसरे समूह में वृत्ताकार (परिमण्डल) चिति बनाने का उल्लेख है। इनका अध्ययन करने से पूर्व वृत्ताकार चिति दो प्रकार के रथचक्र पर नज़र डालें। प्रथम किस्म का रथचक्र वह होता है जिसमें प्रधि अर्थात पहिए की परिधि के वर्गाकार खण्ड होते हैं तथा दूसरे किस्म का रथचक्र वह होता है जिसमें अर अर्थात ताड़ियां होती है। (चित्र: 6 एवं 7)

इन चितियों को बनाने के लिए

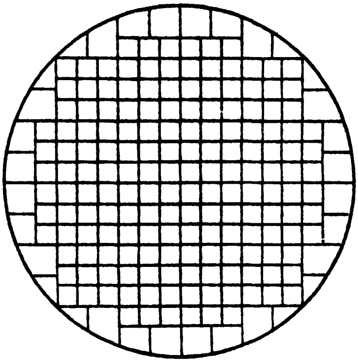

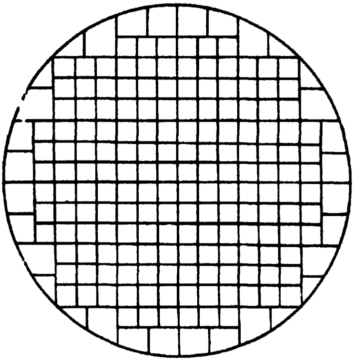

चित्र–6 एवं 7: पहले प्रकार की रथचक्र चिति जिसमें अर या ताड़ियां नहीं होती। बल्कि वृत परिधि के ही वर्गाकार खंड होते हैं।

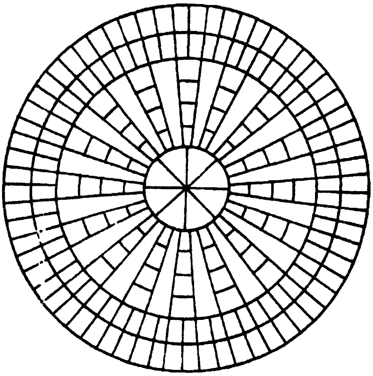

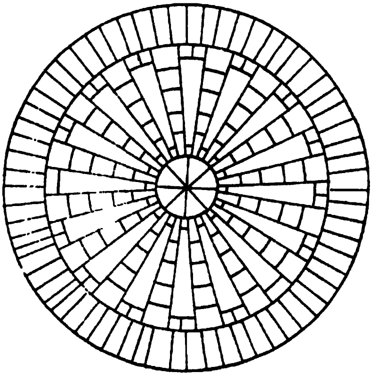

चित्र–8 एवं 9: रथचक्र चिति को बनाने का दूसरा तरीका जिसमें अर या ताड़ियां बनाई जाती हैं। रथचक्र चिति को बनाने के लिए विशेष ईंटों की ज़रूरत होती जिनका एक फलक वक्राकर होना चाहिए।

---

विशेष प्रकार की ईंटों की आवश्यकता होती है। इन ईंटों का एक फलक वक्राकार होता है जबकि शेष तीन फलक सपाट होते हैं। चित्रों से बात और स्पष्ट हो जाएगी। (चित्र 8-9)

इसके बाद द्रोण चिति

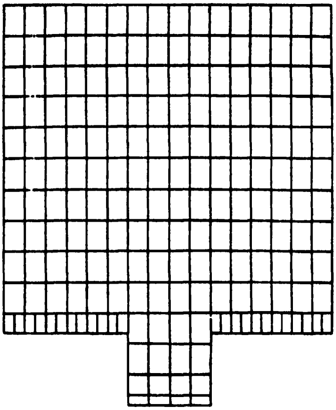

चित्र–10: द्रोण चिति आयताकार की परत 1,3,5

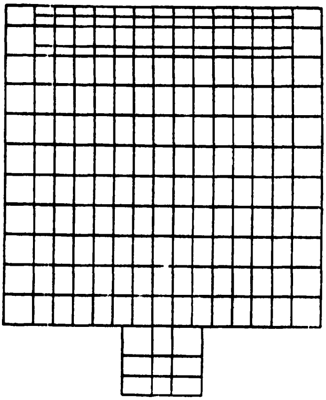

चित्र– 11 द्रोण चिति आयताकार की परत 2 और 4

**तालिका:6 द्रोण चिति (परत 1,3,5) रेक्टिलीनियर**

| क्र | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | आयत | 20, 30 | 600 | 168 | 100800 |
| 2 | वर्ग | 20 | 400 | 4 | 1600 |
| 3 | आयत | 10, 20 | 200 | 28 | 5600 |
| | | | | *योग 200* | *108000* |

**तालिका:7 द्रोण चिति (परत 2,4) रेक्टिलीनियर**

| क्र | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 30 | 900 | 22 | 19800 |
| 2 | आयत | 20, 30 | 600 | 124 | 74400 |
| 3 | वर्ग | 20 | 400 | 15 | 6000 |
| 4 | आयत | 10, 20 | 200 | 39 | 7800 |
| | | | | *योग 200* | *108000* |

| तालिका:8 द्रोण चिति, गोलाकार | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| क्र | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
| 1 | वर्ग | 21.75 | 473.29 | 142 | 67207.95 |
| 2 | तिकोन | 21.75, 21.75, 30.76 | 236.64 | 4 | 946.60 |
| 3 | वर्ग | 30 | 900 | 24 | 21600.00 |
| 4 अ. | | | 300 | 1 | 300.00 |
| 4 ब. | | | 600 | 1 | 600.00 |
| 5 | विशेष ईंट | | | 28 | 17345.45 |
| | | | | *योग 200* | *108000* |

(आयताकार) को देखिए। इसमें किसी विशेष हुनर की ज़रूरत नहीं है, सिवाय इसके कि इसकी वर्गाकार काया के साथ इसे कठौती का रूप देने के लिए इसमें एक हैण्डल (टोंटी) लगाना होती है। दिए गए चित्र व तालिका से स्पष्ट हो जाएगा कि यह कैसे किया जाता है। देखिए चित्र 10 एवं 11 तालिका 6 व 7।

अब देखें वृत्ताकार द्रोण चिति को। प्रमेय क्रमांक 13 की मदद से हमें 107,100 वर्ग अंगुल का एक वृत्त खींचना होगा। गुर यह है: यदि हम 108,000 वर्ग अंगुल क्षेत्रफल का वर्ग बनाते, तो हमें 120 बृहति ईंटों की ज़रूरत पड़ती (प्रत्येक बृहति ईंट का क्षेत्रफल 900 वर्ग अंगुल होता है, अर्थात उसकी प्रत्येक भुजा 30 अंगुल होती है, यानी ये समस्त चतुर्थी ईंटें होती)। यदि हम ऐसी एक ईंट हटा दें तो 107100 वर्ग अंगुल का वर्ग बचा रहेगा। जब इस वर्ग को वृत्त में तब्दील करते हैं तो इस बची हुई ईंट को AB के मध्य में रख देते हैं ताकि जब वर्ग को वृत्त में बदला जाए तो यह दो भागों (2/3 व 1/3) में बंट जाए। इन दो भागों को दो अलग-अलग ईंट मानकर चलना होता है।

अब इस वृत्त के अन्दर बन सकने वाला बड़ा-से-बड़ा वर्ग बनाया जाता है और इस वर्ग को 144 छोटे-छोटे वर्गों में बांटा जाता है। वृत्त के आठ खण्डों में से प्रत्येक 7 विशेष ईंटों (जिनका एक फलक वृत्ताकार हो) और छः बृहति ईंटों से ढंका जाता है। (देखिए चित्र-12)। अर्थात हमारे पास वर्ग को भरने के लिए 144 वर्गाकार ईंटें हैं, परिधि बनाने के लिए 28 (7×4) विशेष ईंटें हैं और 24 (4 × 6) ऐसी बृहति ईंटें हैं जो खण्ड के पैंदे

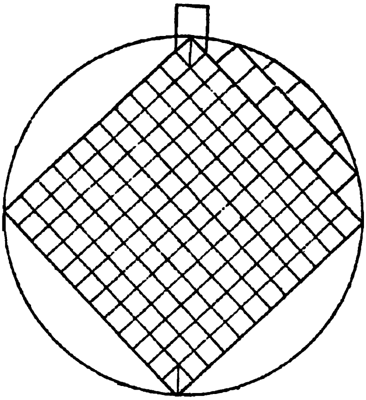

चित्र–12: वृत्ताकार द्रोण चिति की पहली परत में ईंटों की जमावट।

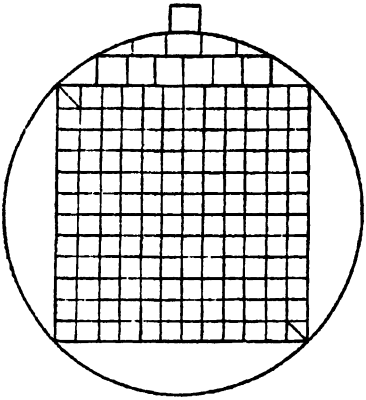

चित्र–13: वृत्ताकार द्रोण चिति की अगली परत बनाने के वर्ग को 45 डिग्री घुमा देते हैं।

में होंगी और वर्ग की भुजाओं को स्पर्श करेंगी।

इस तरह, हमारे पास कुल 144+28+24 = 196 ईंटें हैं। यदि हम इसमें छूटी हुई बृहति ईंट के दो टुकड़े जोड़ दें तो मात्र 198 ईंटे होती हैं। अभी भी आवश्यक संख्या से 2 ईंटें कम हैं। अतः बड़े वर्ग की दो छोटी ईंटों को 2-2 भागों में बांटना होगा। इसके फलस्वरूप 4 तिकोनी ईंटें बनेंगी। परिणाम तालिका-8 में दर्शाया गया है।

दूसरी परत में किसी पुनर्व्यवस्था की आवश्यकता नहीं है, सिवाय इसके कि वर्ग को 45 अंश से घुमाकर बनाया जाए। (चित्र-13)

आइए कूर्म चिति को देखें। चतुर्भुजाकर कूर्म चिति तो कला का नमूना होती है। पक्षी आकार चिति की ही तरह इसकी कल्पना भी किसी ज्यामितिविद ने नहीं बल्कि ज्यामितिविद कलाकार ने की होगी। उसने अपने मन की आंखों से देखा होगा कि चतुर्थी ईंटों (30×30 वर्ग अंगुल क्षेत्रफल) व उनके हिस्सों की एक निश्चित संख्या तथा एक हंसमुखी ईंट मिलकर हूबहू कछुए की छवि निर्मित कर सकेंगे। नीचे दिए गए चित्र व तालिकाएं स्वयं पूरी कहानी कह देते हैं। चित्र 14 एवं 15 तथा तालिका 9 एवं 10 देखिए।

वृत्ताकार कूर्म चिति में इतनी सुन्दरता नहीं होती। किन्तु इसमें भी कुछ हुनर अवश्य लगता है। इसमें भी विधि वही होती है जो वृत्ताकार द्रोण चिति में प्रयुक्त की गई थी। किन्तु एक

बृहति (चतुर्थी) ईंट छोड़ने की बजाए हम पांच ऐसी ईंटों को बाहर छोड़ देते हैं और उन्हें 10 (5×2) भागों में बांटते हैं। इन ईंटों को हटाने के बाद जो वर्ग बचता है उसका क्षेत्रफल 103,500 वर्ग अंगुल (108,000–900×5 वर्ग अंगुल) होता है। इसे वृत्त में तब्दील किया जाता है। इस वृत्त के अन्दर बन सकने वाला बड़ा-से-बड़ा वर्ग बनाकर उसे 144 बराबर वर्गों में बांटा जाता है। चित्र 16 को देखिए।

वर्ग के बाहर के खण्डों को 28 विशेष ईंटों तथा 24 बृहति ईंटों से भरा जाता है। ऐसा करने पर ईंटों की संख्या 144+28+24+10= 206 हो जाती है जो निर्धारित से 6 ज़्यादा हैं।

इन 6 अतिरिक्त ईंटों ने कलाकार को कतई परेशान नहीं किया। कछुए के सिर और पैर का ढांचा बन जाने के बाद कलाकार ने तय किया कि 18 वर्गाकार ईंटों को निकालकर उनके स्थान पर 12 वर्गाकार ईंटें रख दी

**तालिका:9 कुर्म चिति, रेक्टिलीनियर ( परत1,3,5 )**

| क्र | आकार | भुजाएं | ऊंचाई | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 30 | | 900 | 44 | 39600 |
| 2 | तिकोन | $30, 30\sqrt{2}$ | 30 | 450 | 124 | 55800 |
| 3 | तिकोन | $15\sqrt{2}$, 30 | 15 | 225 | 10 | 2250 |
| 4 | वर्ग | $15\sqrt{2}$ | | 450 | 20 | 9000 |
| 5 | पंचकोन | 30,15, | $15\sqrt{2}$ | 675 | 2 | 1350 |
| | | | | *योग* | *200* | *108000* |

**तालिका:10 कुर्म चिति, रेक्टिलीनियर ( परत2,4 )**

| क्र | आकार | भुजाएं | ऊंचाई | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | वर्ग | 30 | | 900 | 58 | 5220 |
| 2 | तिकोन | $30, 30\sqrt{2}$ | 30 | 450 | 102 | 45900 |
| 3 | तिकोन | $15\sqrt{2}$,30 | 15 | 225 | 35 | 7875 |
| 4 | पंचकोन | 30, 15 | $15\sqrt{2}$ | 675 | 1 | 675 |
| 5 | ट्रेपिज़ियम | 15, 30 | $15\sqrt{2}$ | 337.5 | 4 | 1350 |
| | | | | *योग* | *200* | *108000* |

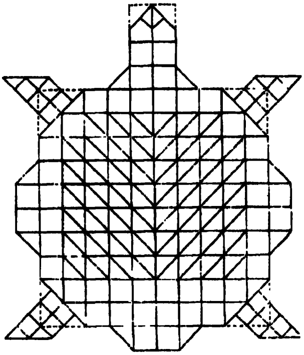

चित्र–14: कूर्म चिति में परत 1, 3, 5

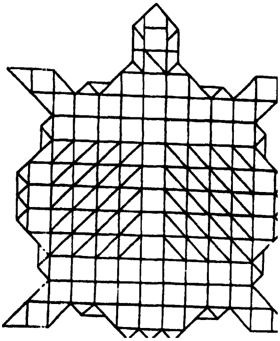

चित्र–15: कूर्म चिति की परत 2 एवं 4

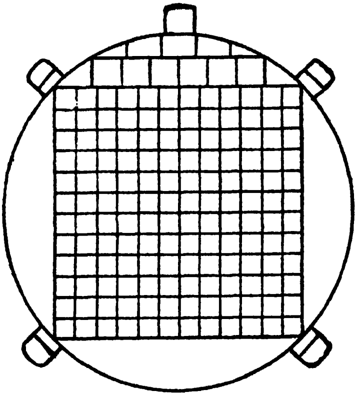

चित्र–16: वृत्ताकार कूर्म चिति की परत 1, 3 और 5 की जमावट

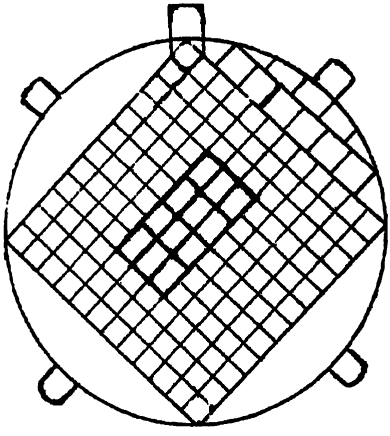

चित्र–17: वृत्ताकार कूर्म चिति में परत 2 और 4 की जमावट

| तालिका:11 कुर्म चिति, गोलाकार | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| क्र | आकार | भुजाएं | क्षेत्रफल | ईंटों की संख्या | कुल क्षेत्रफल |
| 1 | वर्ग | 21.3865 | 457.38 | 126 | 57630.68 |
| 2 | वर्ग | 30 | 900 | 24 | 21600 |
| 3 | वर्ग | 26.1931 | 686.07 | 12 | 8232.95 |
| 4 | विशेष ईंट | | | 28 | 16036.36 |
| 5 | विशेष ईंट | | 300 | 5 | 1500 |
| 6 | विशेष ईंट | | 600 | 5 | 3000 |
| | | | | *योग 200* | *108000* |

जाएं। इन बड़ी ईंटों का क्षेत्रफल 1× (1/2) गुना हो। इस प्रकार से अतिरिक्त ईंटों की समस्या सुलझ जाती है। चित्र 17, तालिका 11 को देखिए।

जो वर्ग बनाया गया था उसे 45 अंश से घुमाना पड़ता है ताकि चार कोने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर की ओर रहें। अर्थात कूर्म चिति की दो परतें द्रोण चिति से ठीक उल्टी होती हैं।

चितियों का इतना विवेचन काफी है। आपस्तम्ब व मानव शुल्व सूत्रों में चितियां बनाने की वैकल्पिक विधियां दी गई हैं किन्तु ये बौधायन शुल्व सूत्र से बहुत अलग नहीं हैं। अब वक्त आ गया है कि हम ईंटों की बात करें।

---

**रामकृष्ण भट्टाचार्य:** आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

**अनुवाद: सुशील जोशी:** एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। साथ ही स्वतंत्र लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

# बंगाल में इस्लाम का जड़ें जमाना

**रिचर्ड ईटन**
संपादन एवं रूपांतरण: गौतम पांडेय

पिछले अंक में हमने देखा कि कैसे मुगल काल में पूर्वी बंगाल के अंदरुनी इलाकों में धीरे-धीरे मस्जिद व मज़ार फैल रही थीं। ढाका और मुर्शिदाबाद में तैनात मुगल अधिकारियों के नज़रिए में ये उन जंगली इलाकों को कृषि योग्य बनाने और उनके इर्द-गिर्द छोटे-छोटे वफादार समूहों के निर्माण में मददगार रहे होंगे। हालांकि अगर धार्मिक नज़रिए से देखें तो यही संस्थाएं अपने प्रभाव क्षेत्रों में दैवी और मानवीय शक्तियों की इस्लामी अवधारणाओं के प्रसार में भी मदद कर रही थीं। 17वीं सदी के आखिर के और 18वीं सदी के शुरू के सरकारी दस्तावेज़ मुगल शासन द्वारा संरक्षित मस्जिदों और मज़ारों में नई जमातों की स्थापना की बात करते हैं और उन्हें इन संस्थाओं के आश्रित (वा बस्तगान) बताते हैं।

इन नए तैयार हुए खेतिहर इलाकों में ऐसी जमातों के साथ-साथ मस्जिदों या मज़ारों पर फातिहा पढ़ने जैसे संस्कारों की भी शुरुआत हुई। फातिहा जो कि कुरान शरीफ की शुरुआती आयत है, मुख्य रूप से दिवंगतों को याद करने से जुड़ा है।

पूर्वी बंगाल के धार्मिक जीवन पर ऐसे साधारण संस्कारों के अनुसरण का समग्र असर यह हुआ कि अल्लाह और पीरों के सम्प्रदाय को बढ़ावा मिला। इस प्रक्रिया को आमतौर पर 'धर्म परिवर्तन' करार दिया जाता है मगर इस शब्दावली का इस्तेमाल करने से पहले हमें इसकी सही समझ बनानी होगी। अगर हम नृशास्त्री मेलफोर्ड स्पिरो की धर्म की व्याख्या को मानें तो धर्म "एक ऐसी संस्था है जो समाज द्वारा कल्पित अतिमानवीय शक्तियों के साथ संस्कृति के ताने बाने के अंतर्गत रिश्ता बनाती है।" इस व्याख्या से यह पता चलता है कि दूसरे किस्म के चाहे कितने भी परिवर्तन हो जाएं, किसी समाज द्वारा अपने लिए एक नई धार्मिक पहचान स्वीकार करना, उस समाज द्वारा स्वीकृत दैवी शक्तियों की पहचान में बदलाव से जुड़ा होगा। अगर हमें पूर्व-आधुनिक बंगाल में इस्लामीकरण की प्रक्रिया को ढूंढना है तो हमें उस वक्त 'अल्लाह' को मिल रही अधिकाधिक तवज्जो पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। साथ ही ईब्लिस (शैतान), आदम, मुहम्मद, फरिश्ता जिब्राईल और बहुत सारे जिन्न-जिन्नात तथा पीर-औलियाओं, जिन्हें अल्लाह और इंसान के बीच मध्यस्थ माना जाता था, पर भी ध्यान देना होगा।

इस प्रक्रिया के लिए *धर्मांतरण* शब्द का प्रयोग करना शायद भ्रामक होगा क्योंकि इससे ऐसा लगता है कि कोई समाज अपनी धार्मिक पहचान अचानक ही पूरी तरह से बदल कर एक नया धर्म स्वीकार कर रहा है। जबकि वास्तव में बंगाल में और सामान्यतः पूरे दक्षिण एशिया में इस्लामीकरण जैसी सामाजिक प्रक्रिया इतनी धीमी या क्रमिक रही है कि इसको महसूस करना भी कठिन है।

फिर भी अगर ऐतिहासिक सिंहावलोकन के तौर पर देखें तो हमें इस प्रक्रिया के तीन अलग-अलग आयाम दिखते हैं जिनमें से प्रत्येक पहलू इस्लामी और हिन्दू दैवी शक्तियों के बीच अलग-अलग तरह से संबंध बनाता है। इनमें से एक को मैं 'समावेश', दूसरे को 'ऐक्यारोप'* और तीसरे को 'विस्थापन' कहूंगा। समावेश से तात्पर्य है कि वह प्रक्रिया जिसमें इस्लामी दैवी शक्तियां स्थानीय देवी-देवताओं के साथ बंगाली जनमानस में दिव्य लोक में सदस्यों के रूप में स्वीकार कर ली गईं। 'ऐक्यारोप' का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें इस्लामी दैवी शक्तियां स्थानीय बंगाली

** ऐक्यारोप – यह संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है दो भिन्न चीज़ों को एक कहना या बनाना। मूल अंग्रेज़ी लेख में आइडेन्टिफिकेशन शब्द का उपयोग हुआ है। – अनुवादक*

मध्यकालीन बंगाली साहित्य, जो स्थानीय देवी-देवताओं जैसे मनसा, चंडी, सत्य पीर, धर्म या दक्षिण राय का गुणगान करता है, में हम देख सकते हैं कि किस प्रकार स्थानीय धार्मिक मान्यताएं विदेशी मुसलमानों की दैवी शक्तियों को समाविष्ट कर रहीं थीं।

उदाहरण के लिए हम 1686 में अधिकार के साथ होता है। इस संयुक्त अधिकार के प्रतीक के रूप में बाघ देवता के सिर का चिन्ह मुस्लिम संत की दरगाह पर लगवाया गया था। इस तरह इन दोनों को एक ही धार्मिक व्यक्तित्व में समाहित न करके दोनों के स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाए रखा है। ऊपरी स्तर पर भी स्थानीय और बहिर्जनित शक्तियों में विभाजन बनाए

*बंगाल के कुछ भागों में इस किस्म का आसान समावेश आधुनिक युग तक चलता आया है। 1956 में यह देखा गया कि पश्चिम बंगाल के सुंदरवन जंगलों के मछुआरे पानी में अपना जाल डालने से पहले जंगल की देवी बन बीबी की एक खास तरह से पूजा करते हैं। यह एक ऐसा संस्कार है जो उन्हें नुकसान से बचाता है। इसके लिए घास-फूस व बांस से बनी एक झोंपड़ी में बाघ पर बैठी 'बन बीबी' की एक मिट्टी की प्रतिमा स्थापित की जाती है जिनके दाहिने तरफ हाथ में तलवार लिए मज़बूत व कद्दावर दक्षिण राय की प्रतिमा होती है। दक्षिण राय के पीछे एक दाढ़ी वाले मुस्लिम फकीर अजमल की प्रतिमा होती है और उनके आगे, एक बच्चे का शरीर व कटा हुआ सिर। हालांकि 1956 के विवरण तथा 17वीं शताब्दी की कविता में वर्णित विभिन्न व्यक्तित्वों के नामों व कर्त्तव्यों में अंतर दिखता है मगर फिर भी इन दोनों विवरणों के मूलतत्व एक बाघ देवता, एक सिपाही और इस्लाम से जुड़ा एक अतिमानवीय व्यक्तित्व सदियों तक वैसे ही रहे हैं, एक दूसरे से अलग मगर एक ही धार्मिक सोच के भाग के रूप में।*

रखा गया। दक्षिण राय और बड़ी गाज़ी खान के संघर्ष का अंत कराने वाला न ही हिन्दू देवता कृष्ण था और न पैगंबर मुहम्मद, बल्कि उसके व्यक्तित्व को आधे कृष्ण और आधे मुहम्मद के रूप में दर्शाया गया। इस तरह इस्लामी दैवी शक्तियां स्थानीय दैवी शक्तियों से दो स्तर पर जुड़ी हुई थीं मगर अभी तक एक दूसरे का पर्याय नहीं बन पाई थीं।

स्थानीय देवी-देवताओं में मुस्लिम दैवी शक्तियों का समावेश वहां के लोक गीतों की समृद्ध परंपरा में भी देखा जा सकता है। परंपरागत रूप से लोकगीतों के कार्यक्रम देवी-देवताओं के आह्वान या वंदना से शुरू होते थे जिसमें बंगाल के ग्रामीण भाट स्थानीय स्तर पर शक्तिशाली समझे जाने वाले सभी देवी-देवताओं की वंदना करते थे। इससे हमें इन लोकगीतों को सुनने वालों के धार्मिक जगत के बारे में काफी कुछ पता चलता है। यहां हम 17वीं-18वीं सदी के चटगांव में प्रचलित एक लोकगीत 'निज़ाम डकैत' की शुरुआती लाइनों को देख सकते हैं।

"सबसे पहले मैं सर्वोच्च देवता प्रभु का नमन करता हूं, उसके बाद सर्वशक्तिमान सृजनहार का और तीसरे, प्रकाश के उस सौम्य अवतार का नमन करता हूं। कुरान और अन्य धर्मग्रंथों को मैं दैवी संदेश मानता हूं जो स्वयं प्रभु के शब्द हैं।

जब प्रभु गहरे ध्यान में मग्न थे तब मुहम्मद का प्रकाशमान चेहरा उनके मन की आंखों के सामने से गुज़रा। उन्होंने उस दृश्य को बार-बार देखा और अपने हृदय में उनके लिए भावुकता महसूस की। इसलिए प्रेमवश उन्होंने मुहम्मद का सृजन किया और उन्हें सूर्य वंश (रवि कुल) के फूल के रूप में धरती पर भेजा। उसके बाद उन्होंने सारे ब्रह्मांड का निर्माण किया। अगर मुहम्मद का अवतार न हुआ होता तो तीनों लोकों में प्रभु की सत्ता की स्थापना नहीं हो पाती।

मैं अब्दुल्लाह और विशेषकर अमीना के चरणों में पूरी श्रद्धा के साथ नमन करता हूं जिन्होंने अपनी कोख से मुहम्मद को इस धरती पर लाया। मैं पश्चिम के मक्का शहर और वहां के संत लोगों को तथा वहां से भी पश्चिम मदीना शहर जहां कि आला रसूल की कब्र है, श्रद्धापूर्वक नमन करता हूं। मैं आला रसूल की बेटी बीबी फातिमा का भी नमन करता हूं जो अली को छोड़कर हम सभी की मां समान हैं।

उत्तर दिशा में मैं हिमालय को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूं जिसकी हिमाच्छादित ऊंचाइयों के नीचे सारा जगत बसा है। पूर्व दिशा से उगने वाले सूर्य को तथा वृंदावन तीर्थ तथा राधे कृष्ण के आगे भी मैं अपना सिर नवाता हूं। इनके बाद मैं

(दुधिया) नदियों व समुद्रों के प्रति भी अपना आदर प्रकट करता हूं जो हमारे दोनों किनारों को धोती हैं। चारों दिशाओं में फैले मुसलमानों के चारों संप्रदायों के प्रति भी मैं अपना सम्मान प्रकट करता हूं। नीचे धरती मां (बसुमाता) और ऊपर स्वर्ग को भी मैं अपनी श्रद्धांजली अर्पित करता हूं।

मैं रौन्या गांव की मां ईसामति तथा नवापारा के महान पीर की मस्जिद के आगे भी अपना सिर नवाता हूं। मैं दाहिनी तरफ की कवलियामूरा की पहाड़ी और बाईं तरफ हीरमई की मस्जिद को भी सलाम करता हूं। मैं पवित्र शंख नदी का भी सम्मान करता हूं – सभी पवित्र स्थलों पर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए मैं सीताकुण्ड (सीता घाट) पहुंचता हूं जहां मैं नारी गुणों की आदर्श देवी सीता और उनके प्रभु रघुनाथ (राम) की पूजा अर्चना करता हूं।"

साफ तौर पर यह लोकगीत अपने गाए जाने वाले क्षेत्र की धार्मिक संस्कृति का विस्तृत प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है जिसमें पास-पड़ोस के पीरों व नदियों से लेकर दूरस्थ हिमालय और यहां तक कि भारतीय दर्शन का 'परब्रह्म' भी शामिल है। सबसे बढ़कर बात तो ये है कि ऐसी वंदना या आह्वान यह दिखाती है कि कितनी आसानी से इस्लामी दैवी शक्तियां एक परिवर्तनशील और प्रवाहशील धार्मिक सोच में शामिल हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि *राय मंगला* कविता के संदर्भ में भी हुआ था, इसमें कवि ने विभिन्न दैवी शक्तियों को एक दूसरे के पर्याय भी नहीं माना है बल्कि उनका अलग अस्तित्व बनाए रखा है।

इस कविता में स्थानीय और बहिर्जनित दोनों तरह के धार्मिक विचारों का समावेश है। एक तरफ तो इसमें दैवी शक्ति के नारी स्वरूप के बंगाली महत्व की तीक्ष्णता दिखती है जैसे मां ईसामति, धरती मां, सीता और राधा। यहां यह महत्वपूर्ण है कि नारी स्वरूप की महत्ता को इस्लामी इतिहास के नारी पात्रों जैसे पैगम्बर की मां अमीना और बेटी फातिमा, की ओर भी बढ़ाया गया है। दूसरी तरफ यह कविता यह भी दिखाती है कि ऐसे विषय जो इस डेल्टा प्रदेश के लिए पूरी तरह से बाहरी थे वो भी यहां की धार्मिक सोच में घुसपैठ कर गए थे। प्रकाश की महत्ता, प्रकाश और पैगंबर मुहम्मद में संबंध और ईश्वर की खुद को देखने की इच्छा के कारण दुनिया का सृजन – ये सब बातें यह सिद्ध करती हैं कि इस्लामी विचारों को फैलाने वाले लोग मुख्य रूप से सूफीवाद से प्रभावित थे। इस बात की पुष्टि, जैसा कि पिछले अंक में हमने देखा था, मुगल शासन के दस्तावेज़ों से भी होती है।

अगर हम इन लोकगीतों द्वारा पूर्वी बंगाल में नई मस्जिदों व मदरसों की स्थापना के बारे में दी गई जानकारियों को मुगल दस्तावेज़ों द्वारा प्राप्त जानकारियों से तुलना करें तो काफी ज्ञानवर्द्धक होगा। जहां सरकारी सनद इन संस्थाओं की स्थापना को मुगल नौकरशाही तंत्र के नज़रिए से बताती है वहीं बंगाली लोकगीतों की परंपरा इस प्रक्रिया को ग्रामीण आश्रितों के नज़रिए से पेश करती है। आइए मैमनसिंह ज़िले में प्रचलित 16वीं सदी का एक लोकगीत 'कंका और लीला' सुनते हैं।

"इस समय एक मुसलमान पीर गांव में आया। गांव के बाहर उसने एक मस्जिद बनवाई और दिन भर एक अंजीर के पेड़ के नीचे बैठा रहता। उसने आसपास की जगह को इतने ध्यान से साफ किया था कि वहां एक घास का टुकड़ा भी नहीं बचा था। बहुत जल्दी उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और हर व्यक्ति उनकी जादुई शक्तियों के बारे में बातें करने लगा। अगर कोई बीमार उनके पास आता तो वे धूल से उसे तुरंत ही ठीक कर देते। वे किसी भी आदमी के मुंह खोलने से पहले ही उसके मन की बातें जान जाते थे। वे अपने हाथ में थोड़ी-सी धूल लेकर उसे चीनी की गोलियों में बदल देते थे जिसे देखकर उनके आसपास के बच्चे आश्चर्यचकित हो जाते थे। उन्हें उनसे प्राप्त ऐसे उपहार बहुत अच्छे लगते। सैकड़ों नर-नारी प्रतिदिन उनके पास आते थे और अपने साथ बड़ी मात्रा में चावल, फल, स्वादिष्ट भोजन, बकरी, मुर्गी आदि चढ़ावे के रूप में लाते थे। इन सारे चढ़ावों को पीर साहब छूते तक नहीं थे और सभी चीज़ों को गरीबों में बांट देते थे।"

हालांकि कोई भी मुगलकालीन सनद इस व्यक्ति या उसकी बनाई मस्जिद का ज़िक्र नहीं करता है मगर ऐसा हो सकता है कि ये भी उन बहुत सारे पीरों या मस्जिदों के व्यवस्थापकों में से एक हो जिन्हें सरकार ने जंगल साफ कर खेत तैयार करके खेतिहरों की बस्ती बसाने या मस्जिद बनवाने के कारण कर मुक्त अनुदान दिया हो। जो भी हो, ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त लोकगीत के पीर अपने करिश्माई व्यक्तित्व और तंत्र-मंत्र से जुड़े होने के कारण आध्यात्मिक रूप से सशक्त समझे जाते रहे होंगे और संभव है कि ग्रामवासियों ने उन्हें आम जनता और मस्जिद से जुड़ी ईश्वरीय शक्ति के बीच मध्यस्थ का दर्जा दे दिया हो।

यह ध्यान देने की बात है कि 19वीं सदी की प्रथम जनगणना के अनुसार इस क्षेत्र की अधिकांश जनता मुसलमान थी। अत: यह व्याख्या उचित

लगती है कि इस तरह के धार्मिक लोगों के मध्यस्थ बनने के कारण स्थानीय लोग इस्लाम की ओर आकर्षित हुए होंगे। लेकिन इसका वास्तविक अर्थ क्या है? हम यह तो नहीं सोच सकते कि इस्लाम और गैर-इस्लामी धर्मों के बीच की दूरी 16वीं सदी के मैमन सिंह में उतनी ही थी जितनी कि 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध में है।

असल में यह सोच कि इस्लाम एक बंद समाज है जो एक निश्चित और दृढ़ दीवारों से घिरा है 19वीं और 20वीं सदी के धर्म सुधार आंदोलनों की उपज है। जबकि पूर्व मध्यकाल के ग्रामीण बंगाली समाज में इस्लाम और गैर-इस्लामी धर्मों को विभाजित करने वाली रेखा काफी बारीक और अस्थिर थी या शायद थी ही नहीं।

ऊपर वर्णित मैमनसिंह के लोकगीत की तरह अन्य लोक साहित्य भी, जो 17वीं सदी से आज तक चले आ रहे हैं, उन लोगों के बीच से उभरे हैं जो अपनी रोज़मर्रा की परेशानियों से जूझने के लिए किसी भी किस्म के मानवीय या अतिमानवीय माध्यम को स्वीकार करने के लिए विशेष रूप से तैयार होते थे।

धार्मिक विचारधारा के प्रति इसी व्यावहारिक रुख को जो बंगाल में धार्मिक परिवर्तन के इस दौर की विशिष्टता थी, मैं सम्मिलन या समावेश कह रहा हूं।

कुल मिलाकर जिन लोगों की बात यहां हो रही है उनकी विश्व दृष्टि ऐसी नहीं थी कि जिसमें किसी एक तत्व को शामिल करने का मतलब था किसी दूसरे तत्व का निष्कासन। जब बंगाली समुदायों ने उन नई तकनीकों और विश्वासों को जिन्हें हम इस्लामी कहते हैं अपनी ग्रामीण व्यवस्था में समावेश करना शुरू किया तो उन्हें यह नहीं मालूम था कि ये नए विश्वास व्यवस्था में मौजूद पुराने विश्वासों को चुनौती देंगे या बिल्कुल ही निष्कासित कर देंगे। 16वीं सदी में मैमनसिंह के ग्रामीण क्षेत्र में आए इस संत के बारे में वहां के लोगों ने यही समझा कि वो उनके लिए दैवी शक्तियों तक पहुंचने के लिए एक ऐसा नया तरीका लेकर आए हैं जो अभी तक उन्हें नहीं मालूम था। हर व्यक्ति उनकी तांत्रिक शक्ति, बीमारों को ठीक करने की शक्ति या दूसरों के मन की बात जान लेने की शक्ति के बारे में बात कर रहा था। लेकिन उनके आने के लिए यह ज़रूरी नहीं था कि पहले से स्थापित मतों जैसे चंडी, मनसा, भगवान कृष्ण या बाघ देवता के प्रति विश्वास को छोड़ना या अस्वीकार करना होगा। न ही ये संत लोग ऐसी कोई घोषणा करते हुए गांवों में आए कि नया ज़माना आ

गया है या एक नए युग की शुरुआत हो रही है।

पुरानी कठिनाइयों से निपटने के लिए नए 'तरीकों' को स्वीकार करने की यही प्रवृत्ति जो कि अपने आप में धर्म परिवर्तन नहीं थी लेकिन जिसे बाद की पीढ़ी धर्म-परिवर्तन कह सकती थी, धर्म परिवर्तन की राह पर पहला कदम था।

## ऐक्यारोप (आइडेन्टिफिकेशन)

यह प्रक्रिया समावेश से फर्क है। जहां समावेश की प्रक्रिया में लोगों की धार्मिक सोच में स्थानीय देवी देवताओं के साथ-साथ अल्लाह, पैगंबर, पीर आदि के लिए जगह बनाई गई, 'ऐक्यारोप' में दो अलग परंपराओं की दैवी शक्तियों को एक-दूसरे के पर्याय बनाया गया।

इस प्रक्रिया का एक शानदार उदाहरण गुजरात के समुद्र तटीय नगर वेरावल में प्राप्त 13वीं सदी के एक द्विभाषीय अभिलेख (संस्कृत और अरबी) में देखा जा सकता है। सन् 1264 का यह अभिलेख बताता है कि होरमुज़ शहर के एक ईरानी व्यापारी नूर-अल-दीन फिरोज़ ने वहां एक मस्जिद बनवाई थी। इस अभिलेख के अरबी मज़मून के अनुसार इस मस्जिद में अल्लाह की उपासना होती थी और नूर-अल-दीन "समुद्री लोगों का राजा, व्यापारियों के राजाओं का राजा तथा मुसलमानों व इस्लाम का सूर्य" था। जबकि इसी अभिलेख का संस्कृत अंश सर्वोच्च देवता को विश्वनाथ, शून्यरूप और विश्वरूप बताता है। इसके अतिरिक्त यह अभिलेख हमें यह भी बताता है कि उस मस्जिद का निर्माण "रसूल मुहम्मद, जो विश्वनाथ के उपासक, नाविकों के बोधक हैं, के 662 वें साल में" हुआ था। इस तरह इसका संस्कृत पाठांतर मस्जिद में उपासित देवता को विश्वनाथ का पर्याय तथा इस्लाम के पैगंबर को 'बोधक' मानता है। इसी प्रकार यह मस्जिद के निर्माता नूर-अल-दीन फिरोज़ को प्राचीन भारतीय चिंतन के अनुरूप 'धर्म बांधव' या धर्म के समर्थक का दर्जा देता है।

इस प्रकार जहां इसका अरबी मज़मून इसके मुसलमान संरक्षक के दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है वहीं इसका संस्कृत पाठांतर पास-पड़ोस की हिन्दू जनता के विचारों को दिखाता है जो बड़ी आसानी से इस्लाम के देवता को अपने विश्वनाथ का पर्याय, इस्लाम के पैंगंबर को हिन्दू 'बोधक' के रूप में तथा उस मस्जिद के संरक्षक को 'धर्म का समर्थक' मानने लगते हैं। संक्षेप में कहें तो वहां की गुजराती जनता उक्त इमारत को, जिसे उसके संरक्षक ने अल्लाह के नाम पर बनाया, अपने विश्वनाथ को समर्पित मानते थे।

16वीं शताब्दी के बाद के बंगाली साहित्य में भी हम इसी किस्म का 'ऐक्यारोप' पाते हैं। 18वीं सदी के कवि (शायर) हाजी मुहम्मद अरबी, अल्लाह को 'गोसांई' का पर्याय मानते हैं, सैयद मुर्तज़ा पैगंबर की बेटी फातिमा को 'जगत जननी' कहते हैं और सैयद सुल्तान, देवता इब्राहिम और मूसा के ईश्वर को 'प्रभु' या ज़्यादातर 'निरंजन' बुलाते हैं। बाद में 18वीं सदी के शायर (कवि) अली राजा, अल्लाह को 'निरंजन', 'ईश्वर', 'जगत-ईश्वर' और 'कर्तार' कह कर बुलाते हैं। इस तरह एक ओर जब कृषि विस्तारक पूर्व के जंगली सीमांत क्षेत्र में इस्लाम के रीति-रिवाज़ों की संस्थागत नींव रख रहे थे उसी वक्त बंगाल के कवि इस्लाम के सामान्य ज्ञान तथा दिव्यजनों को स्थानीय देवताओं के पर्याय घोषित कर उन रीति-रिवाज़ों के मतलब को सुदृढ़ कर रहे थे।

ये कवि फारसी या इस्लामी रूमानी साहित्य का बंगला भाषा में अनुवाद करने के साथ-साथ फारसी या इस्लामी सभ्यता (अर्थात वहां का सौंदर्य बोध, साहित्यिक संवेदनाएं, दैवी संकल्पनाएं तथा दैवी शक्तियों) को बंगाली सांस्कृतिक जगत में रूपांतरित करने का प्रयास भी कर रहे थे। इस तरह नील नदी की पहचान गंगा से की गई और बाईबल के समय के मिस्त्र की कहानियां बाघ और हाथी से भरे घने जंगलों की बात करने लगीं। ऐसी कहानियों के ग्रामीण क्षेत्र केले और आम के पेड़ों तथा मोरों और तोतों से भरे होते थे। इनमें वहां के लोग मछली, चावल-दाल, घी और मीठा दही खाते थे और पान चबाते थे। वहां की औरतें चंदन के लेप से अपने आपको सजाती थीं व रेशम की साड़ी और कांच की चूड़ियां पहनती थीं। इन कहानियों से हर जगह धान के पौधों की ताज़ी खुशबू आती है।

साहित्यिक प्रसारण के लिए कवियों ने यह तरीका क्यों अपनाया इसका कारण ढूंढना मुश्किल नहीं है। पूर्वी डेल्टा के बढ़ते सीमांत प्रदेश के ये ग्रामीण निवासी हिन्दू महाकाव्यों से थोड़ा बहुत परिचित थे। 16वीं सदी के एक कवि ने लिखा है कि "मुसलमान और हिन्दू दोनों ही", प्राचीन भारत का महान महाकाव्य महाभारत पढ़ते थे। उसी समय के एक और कवि ने लिखा है कि रामायण में राम और सीता के वियोग की कथा सुनकर मुसलमानों की आंखों में आंसू भर आते हैं। ऐसे वैष्णव साहित्य के अलावा इस वक्त के लोगों को 'मंगल काव्य' साहित्य जो स्थानीय बंगाली देवियों जैसे चंडी, मनसा आदि के शूरतापूर्ण कार्यों से भरे हैं, बहुतायत में प्राप्त थे। तो ये ज़्यादा आश्चर्य की बात नहीं है कि इस्लामी परंपरा की रूमानी

कहानियों ने समृद्ध स्थानीय धार्मिक परंपरा से काफी कुछ उधार लिया होगा। उदाहरण के लिए यूसुफ और जुलेखा की मशहूर ईरानी कहानी का 18वीं सदी में किया गया बंगला रूपांतर ऐसे अलंकारों का प्रयोग करता है जो बंगाली वैष्णव भक्ति आंदोलन के केन्द्र राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की याद दिलाता है। कहानी में बाईबल युग के यूसुफ का वर्णन कुछ इस प्रकार है:

"तुम्हारा चेहरा पूर्णमासी के चांद की तरह चमकीला है और तुम्हारी आंखें इतनी काली हैं जैसे चांद के चारों ओर मधुमक्खियां मंडरा रहीं हों। तुम्हारी भवें कामदेव के धनुष के समान हैं और तुम्हारे कान नदी किनारे खिले कमल के समान। तुम्हारी कमर शिकारी बाघिन की कमर जितनी पतली हैं। तुम्हारे कदम किसी चिड़िया के कदम जितने हल्के हैं कि जिसे अगर कोई साधु भी देख ले तो सारी दुनिया भूल जाए। तुम्हारा बदन किसी सुनिर्मित मोतियों की माला की तरह त्रुटिहीन है। इस कारण यह दासी अपने आपको नियंत्रित कर पाने में असमर्थ है और तुम्हारे आलिंगन में आने को बेताब है।"

इसी प्रकार 16वीं सदी के उत्तरार्द्ध में चटगांव क्षेत्र के महाकाव्य लेखक सूफी सैयद सुल्तान, हव्वा का वर्णन करने में बंगाली सौंदर्य के किसी भी प्रतीक को नहीं भूलते हैं। वो चंदन का पाउडर लगाती है और अपने बालों को जूड़े में बांधकर उसे फूलों और मोतियों से सुसज्जित करती हैं। वो आंखों में काजल लगाती है और मोतियों की एक माला उसके गले में पड़ी रहती है। आदम उसके माथे पर लगी सिंदूर की बिंदी को देखकर अचम्भित रह जाता है "क्योंकि वह उसे आसमान में सूर्य की याद दिलाता है।"

बंगाली मुसलमान साहित्यकार इस्लामी बिंबों को इस तरीके से प्रस्तुत करते थे कि वहां की हिन्दू या बंगाली लोक संस्कृति से ओत-प्रोत मुस्लिम जनसामान्य को अपनापन लगे। मगर ऐसा करने में उन्हें कुछ व्यथा होती थी। वो ये जानते थे कि इस्लामी विचारों के प्रसारण के लिए अरबी ही उचित माध्यम है मगर वो ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं कर सकते थे जिससे उनके बंगाली श्रोतागण बिल्कुल ही अनजान हों। इस दुविधा की ओर संकेत करते हुए 17वीं सदी के एक कवि अब्द-अल-नबी ने लिखा है "मैं हृदय से डरा हुआ हूं कि कहीं इस्लामी धर्मग्रंथों को बंगाली में लिखने से अल्लाह मुझसे नाराज़ न हो जाएं। लेकिन मैंने अपने डर को दरकिनार करके यह निर्णय लिया कि मैं आम जनता की भलाई के लिए लिखूंगा।"

इस किस्म के उद्‌गार जो बंगाली

संस्कृति और इस्लाम के 'विदेशीपन' के तनाव को प्रदर्शित करते हैं, ज़्यादातर ऐसे लोगों के होते थे जो ग्रामीण अनुभवों से अछूते थे। जैसे – बंगाल के मुस्लिम विद्वान, यूरोपीय यात्री और आधुनिक शोधकर्त्ता?

लेकिन ग्रामीण जनता इस किस्म के तनावों से बिल्कुल ही अनजान थी। उनके लिए तो बहिर्जनित या स्थानीय सोच की पहचान एक लंबे समय के सांस्कृतिक संबंध का परिणाम थी जिसके दौरान अल्लाह और उनसे जुड़ी अन्य दैवी शक्तियां धीरे-धीरे स्थानीय सोच में समा गई थीं। नृशास्त्री जैक गुडी ने जो बातें आधुनिक पश्चिमी अफ्रीका के लिए लिखी हैं वे आधुनिक पूर्वी बंगाल के लिए बिल्कुल सही जान पड़ती हैं। वह कहता है, "मैं पश्चिमी अफ्रीका के किसी भी ऐसे समाज को नहीं जानता जो अपने उच्च देवता को मुसलमानों के अल्लाह या ईसाइयों के जेहोवा का पर्याय नहीं मानते हों। यह प्रक्रिया धर्म परिवर्तन की बात नहीं है बल्कि 'ऐक्यारोप' की बात है। मगर फिर भी यह, बदलाव के लिए रास्ता तैयार करता है।" इसका एक शानदार नमूना है यूनान में ईसाई धर्म का सर्वप्रथम प्रचार। ईसा की पहली शताब्दी में एथेन्स की कौंसिल को संबोधित करते हुए अपोस्तल पॉल कहते हैं:

"एथेन्स के लोगों, मैंने खुद ये देखा है कि धर्म के मामले में आप लोग कितने ईमानदार हैं क्योंकि जब मैं आपके पवित्र स्मारकों की सैर कर रहा था तो मैंने एक वेदी देखी जिस पर यह खुदा था 'एक अज्ञात देवता के लिए', तो जिस देवता की प्रशंसा करने मैं यहां खड़ा हुआ हूं वह कोई और नहीं, वही देवता है जिनकी आप हमेशा से उपासना करते आए हैं।"

इस तरह एथेन्स के देवालयों को सीधे तौर पर त्याग देने की मांग करने की जगह पॉल ने न केवल यूनानियों की धार्मिक ईमानदारी की प्रशंसा की बल्कि ईसाई देवता को एक स्थानीय देवता के समदृश्य खड़ा किया जिससे पुराने से नए की तरफ का संक्रमण (ट्रांज़िशन) वहां के लोगों को आसानी से स्वीकार्य हो।

'ऐक्यारोप' का एक उदाहरण हमें मध्यकालीन बंगाल के मशहूर संत सत्य पीर संप्रदाय के इतिहास में भी मिलता है। इस संप्रदाय से जुड़ी करीब सौ से ज़्यादा पाण्डुलिपियां प्राप्त हुई हैं, जिनमें ज़्यादातर 18वीं शताब्दी की हैं जबकि सबसे पुरानी 16वीं सदी की है। इस तरह इस संप्रदाय का उभरना पूर्वी बंगाल में छोटी-छोटी मस्जिदों और दरगाहों के साथ पनप रहे खेतिहर समुदायों के उद्भव से मेल खाता है। सत्य पीर के सम्मान में लिखा गया शुरुआती साहित्य वहां के जनसमूहों को सांप्रदायिक भावनाओं से मुक्त एक

ऐसे समाज के रूप में चित्रित करता है जो मध्यकालीन बंगाल के उस दौर के धार्मिक वातावरण में प्रचलित किसी भी नए विचार या रिवाज़ को अपनाने को तैयार था। सन् 1644 में लिखित कवि शंकराचार्य द्वारा इस संप्रदाय को समर्पित एक लेख में सत्य पीर को एक मुसलमान और सुल्तान अलाउद्दीन हुसैन शाह की एक बेटी का बेटा मानता है। कृष्णहरी दास द्वारा संकलित एक दूसरा विवरण जो अल्लाह की वंदना और पैगंबर की कहानियों के साथ शुरू होता है, मगर सत्य पीर को देवी चांदबीबी से उत्पन्न बताता है जो इस दुनिया में मानव जाति को कलियुग की त्रासदियों से बचाने आया था। कुछ दूसरे विवरण सत्य पीर को भगवान विष्णु के सत्य नारायण रूप बताते हैं।

कुछ विद्वान सत्य पीर सम्प्रदाय और दूसरे बंगाली लोक धर्मों को इस्लाम और हिन्दू धर्म का समन्वय मानते हैं। मगर ऐसी सोच 19वीं और 20वीं शताब्दी के औपनिवेशिक काल में प्रचलित धर्म की धारणाओं को मध्यकाल पर थोपता है। इस सोच के अनुसार अनादि काल से बंगाल हिन्दू और इस्लाम धर्मों के मानने वाले दो अलग-अलग और अपने आप में परिपूर्ण समुदायों में बंटा था। औपनिवेशिक बंगाली समाज के सांप्रदायिक ध्रुवीकरण ने इस सोच को और प्रबल बनाया। इस समय मुसलमानों ने सत्य पीर की आराधना करनी छोड़ दी और सत्य नारायण पूरी तरह से हिन्दुओं के देवता के रूप में स्थापित हो गए। हालांकि वास्तव में इस किस्म के ध्रुवीकृत धार्मिक समुदायों की उत्पत्ति एक ऐसी अवस्था से हुई जब जनसामान्य स्तर पर संप्रदायों की धार्मिक पहचान बहुत कम विकसित थी, और आधुनिक युग की तुलना में धार्मिक व्यवस्था भी ज़्यादा खुली थी।

मध्यकालीन बंगाली समाज को उसी के संदर्भ में समझने के लिए हमें आधुनिक पर्यवेक्षकों और तत्कालीन मुस्लिम उच्च वर्ग के सदस्यों आदि के मानदंडों को छोड़ना होगा क्योंकि ये इस्लाम के आदर्श रूप को लेकर चलते हैं। हिन्दू और मुस्लिम दो अलग-अलग और अपने आप में पूर्ण सामाजिक समूह जो अपनी स्वाभाविक सांप्रदायिक सीमा से बाहर जाकर एक-दूसरे के रीति-रिवाज़ों को मानते थे, ऐसा चित्रण करना उचित नहीं होगा। बेहतर होगा कि हम उन्हें एक अविभक्त ग्रामीण समाज के रूप में देखें जो अपनी रोज़मर्रा की परेशानियों से जूझने के दौरान, दैवी शक्तियों को खुश करने के लिए उपलब्ध तमाम नामी उपायों (जैसे कहीं किसी संत की पूजा करना या किसी नदी को पवित्र मानना) में से किसी को भी

अपना लेते थे। डुसान जवाविटेल पूर्वाधुनिक मैमनसिंह के लोकगीतों के बारे में कहते हैं कि "वे हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति की उपज नहीं हैं बल्कि एक संयुक्त बंगाली जनसंस्कृति की उपज हैं।" शायद यह बात मध्यकालीन बंगाली लोक धर्म के लिए भी सटीक है।

### विस्थापन

इस्लामीकरण की प्रक्रिया का तीसरा आयाम है स्थानीय धार्मिक सोच से बंगाली दैवी शक्तियों का विस्थापन और उनकी जगह इस्लामी दैवी शक्तियों का प्रतिस्थापन। ये 19वीं सदी और 20वीं सदी के शुरुआती वर्षों में साफतौर पर देखा गया जब फराईज़ी और तरीका-ए-मुहम्मदिया जैसे इस्लामी धर्म सुधार आंदोलनों ने पूरे बंगाली ग्रामीण क्षेत्रों को अपनी गिरफ्त में ले लिया। इन आंदोलनों का उद्देश्य बंगाली इस्लाम से सभी प्रकार के स्थानीय विश्वासों और रिवाज़ों को हटा कर केवल अल्लाह और पैगंबर मुहम्मद के प्रति श्रद्धा बनाना था।

19वीं सदी के धर्म सुधार आंदोलनों में सबसे प्रभावी फरीदी आंदोलन था जिसकी शुरुआत हाजी शरीयत अल्लाह (मृत्यु 1840) ने की थी। हाजी शरीयत अल्लाह बहुत ही साधारण परिवार के थे और उन्होंने 1799 में 18 वर्ष की उम्र में मक्का की यात्रा की थी। मक्का में ही उन्होंने 19 वर्षों तक इस्लाम के धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया। उस वक्त समूचा अरब वहृहाबी धर्म-सुधार आंदोलन की चपेट में था। सन् 1818 में जब हाजी शरीयत अल्लाह वापस बंगाल आए तो उन्हें वहां के रस्मो-रिवाज़ जो अरब जाने से पहले काफी स्वाभाविक लगते थे, वहृहाबी अरब में प्रचलित रिवाज़ों के मुकाबले काफी बेतुके और भौंडे लगे। 1818 से लेकर 1840 में अपनी मृत्यु तक उन्होंने अपने बंगाली धर्म बंधुओं को सुधारने का अथक प्रयास किया। समय के साथ वे किंवदंतियों में शामिल हो गए और बंगाल में इस्लाम के रक्षक समझे जाने के कारण उन्हें अति-ऐतिहासिक व्यक्तित्व का दर्जा दे दिया गया। 1903 से 1906 के आस-पास एक स्थानीय भाट ने उनके कार्यों को कुछ इस तरह पद्य रूप दिया था:

"कहां थे तुम<br>
जब हाजी शरीयत अल्लाह<br>
यहां (बंगाल) आए?<br>
किसने हटाया रिवाज़ फातिहा का,<br>
दरगाहों की अराधना का<br>
और ठीक किया बेईमान मुल्लाओं को?<br>
जब उन्होंने रखे बंगाल में<br>
अपने कदम<br>
सभी शिर्क(बहुईश्यवरवाद)<br>
और बीदतों (पापपूर्ण नवीनताएं)<br>
को कुचल दिया गया

सभी बीदतों को
तब हटा दिया गया
और इस्लाम का सूर्य
ऊंचे आसमान में उठा।"

1894 में जेम्स वाईज़ ने इस धर्म सुधार आंदोलन के बारे में लिखा, "साधारण और गंवार किसानों का आंदोलन है जो पिछले कुछ वर्षों से अपने धर्म को दूषित करने वाले हिन्दू तत्वों को छोड़ रहे थे।" लेकिन जैसा कि ऊपर की कविता से पता चलता है हाजी शरीयत अल्लाह के आंदोलन में हिन्दू तत्वों के अलावा और भी बहुत-सी चीज़ें जुड़ी हुई थीं। फातिहा बंद करवाने, दरगाहों की आराधना रुकवाने और बेईमान मुल्लाओं के प्रभाव को रोकने के संदर्भ में हाजी की कोशिशें उन्हीं साधनों व संस्थाओं को हटाने के प्रयास की ओर इंगित करती हैं, मूलतः जिनके कारण इस्लाम इस डेल्टा प्रदेश में जन्म ले पाया था।

एक और सुधारक – करामत अली के प्रभाव से नोआखली के माझी, मीर बदर और पंचपीर के नाम प्रार्थनाएं त्यागकर केवल अल्लाह को प्रार्थनाएं संबोधित करने लगे। लोगों के नामों में भी इस आंदोलन का प्रभाव देखा जा सकता है। बंगालियों के लिए उनके मुसलमान होने की पहचान अभी तक महत्वपूर्ण नहीं थी, लेकिन अब उन्होंने अरबी उपनाम रखना शुरू कर दिया था जो कि उनके अंदर इस्लामी आदर्शों के गहराने का संकेत था। उदाहरण के लिए 1911 में प्रकाशित नोआखाली का डिस्ट्रिक्ट गेज़ेटियर यह बताता है कि "आज भी चंद, पाल और दत्त उपनाम वाले मुसलमान इस ज़िले में रहते हैं"। लेकिन 1956 तक आते-आते यह देखा गया कि "सुधारक मुल्लों के प्रभाव के कारण" इस ज़िले के मुसलमानों में इस किस्म के उपनाम रखने की प्रथा खत्म हो गई और उनकी जगह अरबी उपनाम आ गए।

इस तरह इस बात में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि 19वीं और 20वीं शताब्दी के बंगाली मुसलमान उस वक्त अरब में प्रचलित विश्वासों व रिवाज़ों से न केवल परिचित थे बल्कि उन्होंने अपने मुसलमान होने की पहचान बनाने के लिए उन्हें अपनाने की भी कोशिश की। इस किस्म की जागरुकता के कारक सर्वविदित हैं जैसे: भारत के ईसाई मिशिनरियों द्वारा इस्लाम पर प्रहार, छपाई की तकनीक के कारण धर्म-सुधार के साहित्य का ज़्यादा फैलाव, उपनिवेशी शासन के परिप्रेक्ष्य में मुसलमान और गैर मुसलमानों में राजनैतिक स्पर्धा और भाप चलित जहाज़ जिन्होंने हज की यात्रा को काफी आसान बना दिया। जैसा कि नृशास्त्री एच. एच. रिस्ले सन् 1891 में लिखते हैं "कुक कंपनी के स्टीमरों के कारण दूरवर्ती मक्का भी अब श्रद्धालुओं की पहुंच में आ गया था, और मुसलमान

सुधारकों और हज से लौटे यात्रियों के कारण पूर्वी बंगाल के मुसलमानों में रूढ़िवादिता का पुनरुत्थान होने लगा।"

## सीमांत संदर्भों में इस्लाम

स्थानीय धार्मिक विचारों को शुद्ध करने के लिए चलाए गए ऐसे आंदोलनों को अगर हम 19वीं या 20वीं सदी की एक घटना या आधुनिकतावाद का असर या उसका जवाब मानेंगे तो ये गलत होगा। अरब में इस्लाम के उदय और मध्यकालीन बंगाल में इसके फैलाव दोनों ही वक्त हम एक आंदोलन या एक ऐसी क्रियाशीलता पाते हैं जो 19वीं और 20वीं सदी के समतुल्य है। प्राचीन अरब, मध्यकालीन बंगाल और आधुनिक बंगाल इन तीनों ही उदाहरणों में हम देखते हैं कि साधारण दैवी शक्तियां, एक बड़े देवता की या तो प्रभुसत्ता में समाहित हो जाती हैं या अधीन हो जाती हैं।

अरब में इस्लाम के उदय ने बंगाल और बाकी मुस्लिम जगत में ऐसे आंदोलनों के लिए एक मॉडल स्थापित किया। दूसरी से सातवीं सदी तक के स्रोत ये बताते हैं कि किस प्रकार यहूदी रिवाज़ों और ईश्वरीय ज्ञान संबंधी विचारों के कारण एकेश्वरवाद का क्रमिक विकास हो रहा था जिसने पैगंबर मुहम्मद ( मृ. 632 ) के समय तक आते-आते इस प्रक्रिया ने अपने अंदर अरब प्रायद्वीप के सारे मूर्तिपूजक कबीलों को शामिल कर लिया था।

ईसा की दूसरी शताब्दी का एक अभिलेख अल्लाह को उत्तर-पश्चिमी अरब के एक कबीले का संरक्षक देवता बताता है। पैगंबर मुहम्मद से दो शताब्दी पूर्व यानी पांचवी शताब्दी का एक यूनानी स्रोत हमें यह बताता है कि उत्तरी अरब के कुछ कबीले एक ऐसे धर्म का पालन करते हैं जो हालांकि अपने मूर्तिपूजक पड़ोसियों के प्रभाव के कारण थोड़ा विकृत है मगर काफी कुछ हज़रत मूसा के समय के यहूदी धर्म से मिलता-जुलता है। वे यहूदियों की तरह सुन्नत की प्रथा का पालन करते थे, सुअर का मांस नहीं खाते थे और "और भी बहुत सारे रीति-रिवाज़ों का पालन करते थे।" यह स्रोत हमें आगे बताता है कि ये अरब यहूदियों के संपर्क में आए थे जिससे उन्हें यह पता चला कि वे हैगर और इस्माइल के माध्यम से इब्राहिम के वंशज हैं। सन् 660 ई. के अरमेनिया के एक इतिहास ग्रंथ से पैगंबर मुहम्मद की सबसे पुरानी जीवनी का पता चलता है जो यह बताती है कि अरब के ये पैगंबर एक व्यापारी थे जिन्होंने अपने लोगों में इब्राहिम के धर्म को फिर से स्थापित किया और इब्राहिम के वंशज होने के नाते खुदा ने जो ज़मीन उन्हें दी थी उसे हासिल करने अपने लोगों को फिलिस्तीन लेकर गए थे।

इस तरह दूसरी से सातवीं शताब्दी

के बीच अल्लाह, जो दूसरी शताब्दी में एक अरब कबीले के संरक्षक देवता थे, हज़रत मुहम्मद के समय तक समूचे अरब जगत के साथ-साथ इब्राहीम के भी खुदा हो गए।

कुरान में भी इस किस्म के क्रमिक विकास की प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। मुहम्मद हज़रत से पहले भी, पश्चिमी अरब के कबीले साधारण या कबीलाई देवी-देवताओं की जगह अल्लाह को ज़्यादा महत्व दे रहे थे। जिस वक्त मुहम्मद हज़रत ने अपने धर्म का प्रचार शुरू किया उस वक्त तक अल्लाह को 'काबा का स्वामी' माना जाने लगा था और इस तरह वो उन सभी काफिर देवताओं, जिनकी मूर्ति मक्का के उस पवित्र स्थान में लगी थी, में से मुख्य देवता भी बन चुके थे। कुरान की कुछ आयतों से इन छोटे देवताओं और फरिश्तों के अस्तित्व की पुष्टि होती है मगर इसमें अल्लाह और मनुष्य के बीच उनकी मध्यस्थ की भूमिका को नकारा गया है। मगर कुछ दूसरी आयतों में अल्लाह के अलावा सभी अरब देवताओं को विशेष रूप से यह कहकर खारिज़ कर दिया गया है कि "ये वो देवता हैं जिन्हें तुमने और तुम्हारे पूर्वजों ने सुझाए (पूजे) थे मगर अल्लाह ने इन्हें नहीं स्वीकारा"। ये दूसरी आयत एकेश्वरवाद के सिद्धांत की विजय को दिखाती है जो विकास की प्रक्रिया का वह अंतिम बिंदु है जहां अल्लाह के अलावा बाकी सभी देवताओं को न केवल प्रभावहीन कहकर खारिज कर दिया जाता है बल्कि उनके अस्तित्व से भी साफ तौर पर इंकार कर दिया जाता है।

इसी किस्म के धार्मिक सुव्यव-स्थितकरण की पुनरावृत्ति आधुनिक बंगाल में की गई जो विशेष रूप से सैयद सुल्तान के महत्वाकांक्षी साहित्यिक प्रयास *'नबी-बंश'* में देखा जा सकता है। 16वीं शताब्दी के आखिर के वर्षों में जब दक्षिण पूर्वी डेल्टा क्षेत्र के जंगली इलाकों के लोगों की कुरान और खेती के संपर्क में आने की शुरुआत ही हुई थी तब इस सूफी कवि की चटगांव क्षेत्र में अच्छी धाक थी। बंगाली मुसलमानों द्वारा राष्ट्रीय धार्मिक महाकाव्य माना जाने वाला *नबी-बंश* केवल आकार में ही महाकाव्य नहीं था। इसका एक मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं के मुख्य देवतागणों, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम और कृष्ण को अल्लाह के पैगंबर बताना था जो क्रमिक रूप से इस दुनिया में आए थे और जिनके बाद क्रमशः आदम, नोआ, इब्राहिम, मूसा, ईसा और मुहम्मद एक क्रम में आए।

इस संबंध में सैयद सुल्तान के इस पूरे उद्यम की तुलना हम 8वीं सदी के मध्य के अरब लेखक इब्न इशाक से कर सकते हैं। इब्न इशाक ने पैगंबर मुहम्मद की पहली 'इस्लामी' जीवनी

लिखी है। दोनों लेखकों ने एक ऐसा विश्व इतिहास लिखना चाहा था जो मानव की उत्पत्ति से शुरू होकर पैगंबर मुहम्मद की ज़िंदगी का वर्णन करे। इस काम में इन दोनों ने अपनी कृतियों को दो बड़े भागों में बांटा: इसका पहला भाग था मुहम्मद से पहले के सभी पैगंबरों का जीवन वृतांत और दूसरा भाग विशेष रूप से पैगंबर मुहम्मद को समर्पित था। इतिहासकार गॉर्डन न्यूबी लिखते हैं कि इब्न इशाक की *किताब-उल-मुब्तदा* में "सारी दुनिया के इतिहास को अपने में मिलाकर यह दिखाया है कि समय के प्रवाह को इस्लाम की ओर बढ़ना था जिसने यहूदियों और ईसाइयों के सभी पैगंबरों और संतों को अपने में समाविष्ट किया। अंत में इसी प्रवाह ने अबासिदों के साम्राज्य का निर्माण किया, जिसके अंदर मुसलमान ईसाई व यहूदी तीनों शामिल थे।" इसके अतिरिक्त बाईबल और कुरान की टीका के रूप में '*किताब-उल-मुब्तदा*' "मुसलमानों के उस दावे को उभारता है कि इस्लाम यहूदी और ईसाई दोनों ही धर्मों का वारिस है।" इसी तरह '*नबी-बंश*" बाइबल युग के नायकों के अलावा वैदिक, वैष्णव व शैव देवताओं पर विस्तृत रूप से टीका कर यह दावा करता है कि इस्लाम यहूदी व ईसाई धर्मों के साथ-साथ मुसलमानों के आने से पहले के बंगाल की धार्मिक परंपराओं का भी उत्तराधिकारी है।

*किताब-उल-मुब्तदा* और *नबी-बंश* की संरचनात्मक समानता उस समान ऐतिहासिक परिस्थितियों को उभारती है जिनमें इनका संकलन हुआ था। दोनों ही लेखक सीमांत परिस्थितियों में रहते थे जहां इस्लाम राजनैतिक रूप से प्रबल होते हुए भी नए और दूसरे पुराने संप्रदायों को मानने वालों के मुकाबले बहुत छोटा था। इसके अतिरिक्त इन दोनों ही मामलों में मुसलमानों की राजनैतिक व धार्मिक पहचान अभी पूरी तरह नहीं बन पाई थी। ऐसी सीमांत परिस्थितियों ने सांस्कृतिक रचनात्मकता को बढ़ावा दिया जैसे इब्न इशाक और सैयद सुल्तान दोनों ने गैर-मुस्लिम समुदायों के मुकाबले अपने समुदाय की सांस्कृतिक पहचान को बताना ज़रूरी समझा। दोनों ने उन पैगंबरों और संतों के ऐतिहासिक और वैचारिक कार्यों का उल्लेख करने की कोशिश की जो पैगंबर मुहम्मद से पहले हुए थे। ऐसी नीति से वे न केवल उनके अपने और बहुसंख्यक समुदाय के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध बना पाए बल्कि बहुसंख्यक समुदाय के ऊपर अपनी श्रेष्ठता का दावा भी पेश कर पाए।

इब्न इशाक ने अपनी पुस्तक *किताब-उल-मुब्तदा* का अधिकांश हिस्सा सन् 760 के दशक में बगदाद

में लिखा था। पश्चिमी अरब के इस्लामी हृदय क्षेत्र मक्का और मदीना से काफी दूर उत्तर में पुराने फारसी ससानी वंश की राजधानी के करीब बसा बगदाद सांस्कृतिक रूप से सीमांत क्षेत्र ही था जहां मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच बड़े पैमाने पर परस्पर-क्रिया होती थी। उस वक्त ईरान और इराक की कुल 10 प्रतिशत जनसंख्या ही मुसलमान थी। बाकी ईसाई, यहूदी और पारसी थे। चूंकि ईसाई और यहूदी धर्मग्रंथों के बहुत से पात्र कुरान में भी शामिल हैं, तो कुरान को अच्छी तरह समझने के लिए उन समुदायों में प्रचलित ऐसे पात्रों से संबंधित लोक कथाओं का संकलन करने के लिए इब्न इशाक जैसे आरंभिक मुसलमान विद्वान काफी परिश्रम करते थे। इस्लाम के बाहर से प्राप्त ऐसी सामग्रियों को तब एक उभरते हुए समुदाय, इतिहास और पैगंबरवाद की संकल्पना में जोड़ा जाता था जो इस नए मुस्लिम समुदाय को पुराने समुदायों से उसकी विशिष्टता दिखाते हुए जोड़ता था।

आठवीं शताब्दी के आते-आते ज़्यादातर सृजनशील लोग जो इस्लाम की सांस्कृतिक पहचान बनाने में प्रयासरत थे मक्का और मदीना के आसपास नहीं बल्कि उत्तर की ओर जा चुके थे जहां अरब के मुसलमानों को काफी पुरानी सभ्यताओं का सामना करना पड़ रहा था। लेकिन बगदाद लंबे समय तक सीमांत समाज नहीं बना रहा। इब्न इशाक बगदाद में एक ऐसे दौर में रह रहे थे जब अबासिद साम्राज्य सुस्थापित नहीं हुआ था और जब इस्लामी संस्कृति का निर्माण हो ही रहा था और धार्मिक अवधारणाएं प्रवाहशील थीं। उस वक्त तक इस्लामी कानून की विभिन्न विचारधाराओं की स्थापना भी नहीं हुई थी और न ही बगदाद एक सीमांत शहर से एक बड़े महानगर और निरंतर फैलते इस्लामी सभ्यता के महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में ही उभर पाया था। परंतु जब इराक, सीरिया और ईरान के ज़्यादातर लोग इस्लाम स्वीकार कर चुके थे तो लोगों की दिलचस्पी इस्लाम से पहले के इतिहास में कम होने लगी और इस्लाम से पहले के पैगंबरों का वर्णन करने वाली इब्न इशाक की पुस्तक अप्रसिद्ध और अप्रचलित हो गई।

हालांकि सैयद सुल्तान की *नबी वंश* इब्न इशाक के आठ सौ वर्ष बाद आई लेकिन वो भी मुस्लिम समुदाय के सामाजिक धार्मिक चेतना के विकास की उसी अवस्था में आई जिसमें इब्न इशाक की पुस्तक आई थी। इसलिए इसमें भी हम इस्लाम को उसकी पूर्ववर्ती परंपराओं से जोड़ना और फिर उसे उनसे अलग दिखाने की प्रवृत्ति पाते हैं। सैयद सुल्तान ने न केवल आदम के देवता को संस्कृत के प्रभु और निरंजन के पर्याय माना बल्कि

'पैगंबर' या 'नबी' की इस्लामी धारणा को भी हिन्दू अवतार से जोड़ा।

---

हालांकि 'अवतार' और 'नबी' में समानता सर्वप्रथम सैयद सुल्तान ने नहीं की थी। इसका सर्वप्रथम उल्लेख सुल्तान महमूद गज़नी द्वारा लाहौर से सन् 1027 और 1028 में जारी सिक्कों में मिलता है जिसमें मुहम्मद को 'अवतार' कहा गया था।

---

कवि ने अपने इन विचारों को अपने महाकाव्य के शुरू में ही रख दिया है। भारत के पौराणिक साहित्य की अवधारणाओं से प्रेरणा लेकर वह लिखते हैं कि "जिस प्रकार दूध में मक्खन मिला हुआ है उसी प्रकार प्रभु इस दुनिया में समाए हैं और उन्होंने अपने आपको मुहम्मद के रूप में प्रकट किया जो उनके अवतार हैं।"

वे दैविक क्रियाओं की हिन्दू और सूफी धारणाओं को भी आपस में जोड़ते हैं। "वृंदावन में कृष्ण का अवतार प्रेम प्रकट करने के लिए हुआ था।" ऐसे वैष्णवी विचारों को व्यक्त करने के बाद वे सूफी सोच को दिखाते हैं कि 'निरंजन' दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखकर अतिप्रसन्न होते थे, और कि आसमान और फरिश्तों का निर्माण करने से पूर्व उन्होंने 'नूर-ए-मुहम्मद' का सृजन किया। सैयद सुल्तान चारों वेदों को भी अलग-अलग समय पर 'निरंजन' या 'कर्तार' द्वारा महान पुरुषों को दिया गया दैवी-संदेश मानते हैं। इसी तरह ब्राह्मणों का सृजन लोगों को 'निरंजन' के बारे में बताने और वेदों को समझाने के लिए किया गया था। इस तरह यह महाकाव्य तत्कालीन बंगाल में पहले से प्रचलित सामाजिक और धार्मिक विचारों को अस्वीकार करने की बजाए उनसे एक रिश्ता बनान की कोशिश करता है, कम-से-कम उस भाग से तो निश्चित रूप से जो ब्राह्मणों के धर्मशास्त्रों में वर्णित हैं।

वास्तव में पुस्तक का नाम 'नबी बंश' अर्थात 'पैगंबर का परिवार' ही यह इंगित करता है कि लेखक की कोशिश मुहम्मद को बंगाल के देवताओं और यहूदी पैगंबरों के एक बड़े परिवार में स्थापित करना है। जिस प्रकार पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने में परिवार के लोग मदद करते हैं उसी प्रकार 'नबी बंश' के इस्लामी पात्र समय-समय पर हिन्दुस्तानी दुविधाओं या समस्यात्मक परिणामों का समाधान करने अवतरित होते हैं। कवि ने लिखा है कि इंसानों की सृष्टि करने से पूर्व निरंजन ने फरिश्तों और शैतानों को शिक्षा देने के लिए एक नबी (पैगंबर) का सृजन किया क्योंकि वे (फरिश्ते व शैतान) अपने 'धर्म' से विमुख हो गए थे। और आदम का सृजन मशहूर महाकाव्य रामायण की समस्यात्मक परिणति के समाधान के एक उपाय के तौर पर धरती मां देवी

क्षिति (और सीता की माता) की मिट्टी से किया गया। देवी क्षिति की शिकायतें सुनकर कि उनकी पुत्री (सीता) को बहुत अपमान सहना पड़ा और उन पर राम से बेवफाई करने का मिथ्या आरोप लगाया गया, निरंजन ने फरिश्तों से कहा, "मैं आदम के द्वारा क्षिति को खुश करूंगा; मैं क्षिति की माटी से आदम का सृजन करूंगा।"

लेकिन *नबी-बंश* को मुख्य रूप से एक हिन्दू महाकाव्य, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण इस्लामी पात्र और तकनीकी शब्द शामिल हैं, कहना गलत होगा। इसे विदेशी और स्थानीय देवताओं में संबंध स्थापित करने वाली 'संहिता' भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कवि धर्म की मूलभूत बातों के लिए यहूदी-इस्लामी विचारधारा की सहायता लेते हैं, हिन्दू दर्शन का नहीं। उदाहरण के लिए उनका मत कि 'निरंजन' के द्वारा प्रत्येक नबी/अवतार को उनके समय के अनुसार धर्मग्रंथ दिए गए थे, एक ही देवता के कई अवतार वाली हिन्दू विचारधारा से अलग था। इस तरह यह यहूदी-इस्लामी दर्शन के पैगंबरों के 'केवल एक बार' आगमन के सिद्धांत की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त यह महाकाव्य हिन्दू दर्शन के विभिन्न युगों (सतयुग, कलियुग आदि) की संकल्पना को भी नहीं मानता। बल्कि सैयद सुल्तान के अनुसार जब किसी नबी/अवतार के काल में धर्म का विनाश होने लगता था तो भगवान फिर से धर्म में आस्था जगाने के लिए एक नए पैगंबर/अवतार को भेजता है और इस सिलसिले का अंत सबसे उत्कृष्ट नबी/अवतार मुहम्मद के आने के साथ हुआ। कवि बताता है कि ईश्वर (कर्तार) ने मुहम्मद को उनके संदेशवाहक के रूप में आने की जानकारी चारों वेदों में भी दी है।

इस तरह यह महाकाव्य धार्मिक समय की एक रैखीय अवधारणा को प्रस्तुत करता है जो किसी भी तरह चाक्रिक तो नहीं है मगर ईश्वर के इंसानी मामलों में आखिरी पैगंबरीय हस्तक्षेप की बात करता है। इस तरह यह मानव के इतिहास में भगवान की भूमिका और पैगंबरी के बारे में कुरान की समझ का पूरी तरह से समर्थन करता है, हालांकि यह अल्लाह को निरंजन के और नबी को अवतार के पर्याय भी मानता है। लेकिन पैगंबर मुहम्मद को मध्यपूर्व के सभी नबी या पैगंबरों और हिन्दुस्तानी देवी देवताओं की लंबी शृंखला के आखिर में दिखाया गया है और उनके साथ किसी की समदृश्यता भी स्थापित नहीं की गई है। इस तरह हज़रत मुहम्मद की पैगंबरी की श्रेष्ठता का एलान करने के बाद सैयद सुल्तान बंगाल की धार्मिक सोच से दूसरे नबी या अवतारों को हटाने का आधार प्रदान करते हैं। इस मामले

में सैयद सुल्तान अपने उन पूर्ववर्ती बंगाली कवियों से अलग हैं जो अल्लाह को बंगाल की धार्मिक सोच में शामिल कर या उन्हें किसी स्थानीय देवता के सदृश्य मानकर संतुष्ट थे।

असल में सैयद सुल्तान अपने समय में प्रचलित हिन्दू सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था को भ्रष्ट इस्लामी फरिश्ता इब्लीस या शैतान की करतूत मानते हैं। उनके अनुसार इब्लीस ने वेदों का पता लगने के बाद उसका एक वैकल्पिक और भ्रष्ट पाठ तैयार किया जिसे ब्राह्मण लोग अनजाने में अपने लोगों के बीच प्रचार करते रहे।

संक्षेप में कहें तो *नबी-बंश* इस्लामी दैवी शक्तियों को हिन्दुस्तानी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की बजाए बिल्कुल उल्टा करता है। हिन्दुओं को आदम और हव्वा के दिग्भ्रमित बेटे कैन का वंशज बताया गया है। जबकि 'सही प्रकार से निर्देशित' मुस्लिम उम्मा या समाज को आदम और हव्वा के दूसरे बेटे शीश का वंशज बताया गया है। इस महाकाव्य में इस्लाम को किसी भी अन्य धार्मिक चेतना का पर्याय नहीं माना गया है, न ही 'अल्लाह' को अन्य देवी देवताओं में सम्मिलित किया गया है। इसके विपरीत इब्न इशाक की तरह सैयद सुलतान भी इस्लाम के आगमन को एक खास आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया के अपरिहार्य परिणाम के रूप में दिखाते हैं।

## अंत में . . .

असल में सामान्य बंगाली धार्मिक सोच की गतिशीलता ने बंगालियों को बहिर्जनित विचारों से सृजनात्मक संबंध बनाने की अनुमति दी। स्थानीय और इस्लामी दोनों ही विचारधाराओं के शीर्ष पर एक या दो उच्च देवता होते थे जो साधारण दैवी शक्तियों से भरे ब्रह्मांड का नियंत्रण करते थे। अल्लाह को इस्लाम का उच्च देवता माना गया जिनके बाद बहुत सारी साधारण दैवी शक्तियां थीं। इन दैवी शक्तियों के शीर्ष पर पैगंबर मुहम्मद थे तो नीचे की तरफ बहुत सारे चमत्कारी पीर वगैरह। शुरुआत में फारसी-इस्लामी संस्कृति से जुड़ी दैवी शक्तियों को स्थानीय धार्मिक विचारधारा में स्थानीय दैवी शक्तियों के साथ बड़ी आसानी से शामिल कर लिया गया। कुछ समय पश्चात इन दैवी शक्तियों को स्थानीय देवी-देवताओं का पर्याय माना जाने लगा, और फिर उसके कुछ समय पश्चात इन्होंने स्थानीय देवताओं को पूरी तरह से विस्थापित कर दिया।

मगर जैसा कि किन्हीं भी बहिर्जनित विचारों के साथ होता, बंगाली विचारधाराओं में इन इस्लामी दैवी शक्तियों की प्रगति को हमेशा एक अपरिचित की तरह देखा गया।

## तालिकाः पूर्वी बंगाल में इस्लाम के प्रसार के विविध चरण

A= स्थानीय उच्च देवता, B = इस्लाम के उच्च देवता

a = स्थानीय साधारण देवतागण, b = इस्लाम की साधारण दैवी शक्तियां।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| A | A B | A - B | B | |
| a | a b | a - b | b | B |
| a | a b | a - b | b | |
| a | a b | a - b | b | |
| स्थानीय धार्मिक सोच | समावेश | एक्यारोपण | विस्थापन | एकेश्वरवादी आदर्श |

**प्रतीकात्मक रूप से यह दिखाने की एक कोशिश कि किस तरह स्थानीय धार्मिक सोच से समावेश, ऐक्यारोपण, विस्थापन और एकेश्वरवादी आदर्श तक का सफर धीमे-धीमे तय होता चला जाता है।**

व्यापक मान्यता प्राप्त करने के लिए किसी भी देवी-देवता को न केवल शक्तिशाली और असरदार होना ज़रूरी था बल्कि उसका उतना ही स्थानीय होना भी ज़रूरी था। इस तरह बंगाल में इस्लाम आखिरकार इस बात पर निर्भर करता था कि इस्लामी दैवी शक्तियां जो अरब संस्कृति की उपज थी और जिसने बाद में यहूदी, यूनानी और ईरानी सभ्यताओं को अपनाया था किस हद तक बंगाली सभ्यता की चीज़ों को अपनाती हैं। इस प्रक्रिया की शुरुआत थी इस्लामी और बंगाली दैवी शक्तियों में सहयोग या समदृश्यता स्थापित करना। लेकिन जब आदम, हव्वा और इब्राहीम जैसे चरित्र बंगाली इतिहास और सभ्यता के केन्द्रीय पात्रों से पहचाने जाने लगे, तब इस्लाम भी प्रामाणिक तौर से बंगाली रूप में स्थापित हो गया।

---

**रिचर्ड ईटनः** ऐरीज़ोना विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर।
**अनुवादः गौतम पांडेयः** एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं।

# संतान की<br>का नायाब तरीका

**के. आर. शर्मा**

सितंबर महीने की दोपहरी का समय है। मैं अपने घर में बैठा हूं, तभी देखता हूं कि एक कत्थई पीले रंग का पंखदार कीट बार-बार गुनगुन करता हुआ घर में घुसता है और लौट जाता है। अगली बार मैं उसको ध्यान से देखता हूं तो पता चलता है कि उसने अपनी टांगों में कोई हरी चीज़ पकड़ी हुई है। उस हरे रंग की लंबी-सी चीज़ को उसने कमरे में रखी मूर्ति पर मिट्टी के घरौंदे में घुसा दिया और फिर रवाना हो गया।

मेरी रुचि जागृत होती है कि आखिर मामला क्या है? अगली बार वह जब फिर घर के भीतर आया तो मैंने उसे पकड़ लिया। पता चला कि उसने अपनी टांगों में एक इल्ली को पकड़ रखा है। यानी उस मिट्टी के घरौंदे में वह इल्लियों को दफन कर रहा है। इससे मामला काफी दिलचस्प मोड़ ले लेता है।

पंखदार कीट को देखकर पता चल गया कि यह एक ततैया (Wasp) है। ततैया, चींटी, मधुमक्खी एक ही समूह (हायमेनोप्टेरा) के कीट हैं। हमारे आसपास बहुतायत में पाई जाने वाली बर्र (पेपरवास्प) सामाजिक जीवन व्यतीत करने का एक उदाहरण है।

जिस ततैया की हम बात कर रहे हैं वह मिट्टी का घरौंदा बनाती है। सबसे पहले मादा ततैया गीली मिट्टी की गोलियां बनाती है और मुंह तथा टांगों की मदद से नियत स्थान पर लाकर उनसे मटके के समान घरौंदा तैयार करती है। चूंकि मटके की आकृति से मिलता-जुलता घरौंदा बनाती है इसी कारण इसका अंग्रेज़ी में नाम पड़ा 'पॉटर वास्प' यानी मटका बनाने वाली ततैया।

आगे बढ़ने के पहले संदर्भ के अंक 24-25 में सिकाड़ा किलर के बारे में प्रकाशित जानकारी की चर्चा करना मौजूं होगा कि किस प्रकार एक किस्म की ततैया सिकाड़ा को मारकर उसमें

अंडे देती है। एक अन्य ततैया होती है जो अपने से ताकतवर मकड़ी को घायल करके ज़मीन में दफना देती है तथा उसके शरीर में अंडे देती है।

पॉटर वास्प अपने संतान की परवरिश के लिए मिट्टी का घरौंदा बनाती है तथा उसमें इल्लियों को दफन करके रखती है। इसी घरौंदे में मादा ततैया अंडा देती है जिसमें से निकला बच्चा इन इल्लियों को अपना आहार बनाकर विकसित होता है।

पॉटर वास्प सामाजिक जीवन नहीं जीती, बल्कि एकांतवासी (Solitory) होती है। यह बर्र से आकार में बड़ी होती है। सबस पहल मादा ततैया गीली मिट्टी का स्रोत ढूंढती है और किसी सुरक्षित स्थान पर घरौंदा बनाने की शुरुआत करती है। बार-बार गीली मिट्टी के स्रोत तक जाना, मिट्टी लाना और घरौंदा बनाना काफी थका देने वाला काम है। घरौंदे को मज़बूत बनाने के लिए वह अपने मुंह से कुछ तरल पदार्थ मिलाती है। एक घरौंदे में एक से लेकर तीन या चार कक्ष होते हैं। प्रत्येक कक्ष स्वतंत्र होता है। अब अगला चुनौती भरा काम होता है

**भोजन की व्यवस्था:** मादा ततैया अपने तैयार किए घरौंदे में अंडे देने के बाद अपनी संतान के लिए खाने की भरपूर व्यवस्था करके रखती है। यहां मादा एक बड़ी-सी इल्ली को बेहोश करके घरौंदे में रख रही है।

**ततैया के घरौंदे:** आमतौर पर इस ततैया के घरौंदे घर में या पेड़-पौधों की डालियों पर देखे जा सकते हैं। आपने भी खिड़की-दरवाज़ों की चौखट पर या काफी दिनों से एक ही जगह पड़े सामान पर इस किस्म के मिट्टी के घरौंदे देखे होंगे। यहां चित्र में एक मूर्ति पर बनाया गया घरौंदा दिख रहा है। इसमें एक इल्ली भी रखी हुई है।

दाहिनी ओर के चित्र में ततैया के घरौंदे के दो-तीन कक्ष दिखाई दे रहे हैं। इनमें से एक कक्ष में दो इल्लियां रखी हुई हैं। इनमें से मोटी इल्ली ततैया की है जो ज़्यादा चल-फिर नहीं पाती और पतली इल्ली भोजन के लिए है।

तीनों फोटो: के. आर. शर्मा

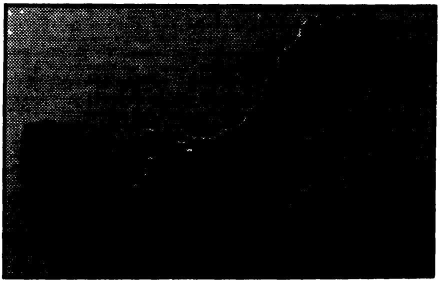

**खाने का लुत्फ:** मोटी वाली ततैया की इल्ली अपने भोजन के लिए परोसी इल्ली का रस चूस रही है।

इल्लियों को ढूंढकर लाना। ततैया और इल्ली का वज़न लगभग बराबर होता है यानी कि ततैया अपनी बराबरी का वज़न लादकर लाती है।

यह देखा गया है कि वह एक कक्ष में 6-8 इल्लियां दफन करती है। अर्थात अपनी एक संतान के भोजन के लिए इतनी इल्लियों की व्यवस्था करनी पड़ती है। जब मादा ततैया को यह यकीन हो जाए कि उसकी संतान के लिए आहार की व्यवस्था हो गई तो फिर वह उस कक्ष में एक अंडा देती है और फिर कक्ष को मिट्टी से बंद कर देती है।

हम देखते हैं कि तितली और पतिंगे की इल्लियां काफी सक्रिय होती हैं। इनकी परवरिश माता-पिता नहीं करते। तितली किसी पेड़-पौधे पर अंडे दे देती है और फिर उनकी तरफ मुड़कर भी नहीं देखती। अंडों से इल्लियां निकलती हैं जो स्वतंत्र रूप से जीवन जीती हैं। लेकिन ततैया की अनेक प्रजातियां ऐसी हैं जो अन्य जंतुओं को पकड़कर तथा उनको बेहोश करके उनके शरीर में अंडे देती हैं। इन अंडों से निकलने वाली इल्ली, जो बिना टांगों वाली होती है, उस कड़ी इल्ली को खाती है।

पॉटर वास्प बरसात के दिनों में प्रजनन करती है जब खूब सारी इल्लियां पौधों पर मौजूद रहती हैं और घरौंदा बनाने के लिए गीली मिट्टी भी मिल जाती है।

पॉटर वास्प के अंडों से निकली इल्ली एक-एक करके इल्ली को अपना आहार बनाती जाती है। यह देखा गया है कि ततैया की इल्ली अपने आहार यानी दूसरी इल्ली को पूरा नहीं खाती बल्कि उसके अंदर का रसीला पदार्थ चूसती है और अंत में बचा रहता है खोल। यह भी देखा गया है कि यह वास्प एक खास किस्म की इल्लियों को ही पकड़कर घरौंदे में दफन करती है।

है न दिलचस्प मामला कि जो वयस्क ततैया फूलों का रस चूसकर अपना पोषण करती है वही अपनी संतान की परवरिश के लिए इल्लियों को बेहोश करके उनके भोजन की व्यवस्था करती है।

**के. आर. शर्मा:** एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। उज्जैन में रहते हैं।

घरौंदा बनाने के लिए गीली मिट्टी का गोला लाती हुई ततैया। →

12737